

ISSN 0972-5636

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 39

अंक 1

जुलाई 2018



पत्रिका के बारे में

भारतीय आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षाविदों, शैक्षिक प्रशासकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षकों, शोधकों एवं विद्यार्थी-शिक्षकों को एक मंच प्रदान करना। शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों, जैसे — बाल्यावस्था में विकास, समकालीन भारत एवं शिक्षा, शिक्षा में दार्शनिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान के आधार एवं पाठ्यचर्या, अधिगम का आकलन, अधिगम एवं शिक्षण, समाज एवं विद्यालय के संदर्भ में जेंडर, समावेशी शिक्षा, शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा हेतु आई.सी.टी. में नवीन विकास, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की स्थिति पर मौलिक एवं आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना तथा शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एवं विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा भेजे गए सभी लेख, शोध-पत्र आदि का प्रकाशन करने से पूर्व संबंधित लेख, शोध-पत्र आदि का समकक्ष विद्वानों द्वारा पूर्ण निष्पक्षतापूर्वक पुनरीक्षण किया जाता है। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते, इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

© 2018. पत्रिका में प्रकाशित लेखों का रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित है, परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना, लेखों का पुनर्मुद्रण किसी भी रूप में मान्य नहीं होगा।

सलाहकार समिति

निदेशक, रा.शै.अ.प्र.प. : हृषिकेश सेनापति
अध्यक्ष, अ.शि.वि. : राजरानी
अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : एम. सिराज अनवर

संपादकीय समिति

अकादमिक संपादक : जितेन्द्र कुमार पाटीदार
मुख्य संपादक : श्वेता उप्पल

अन्य सदस्य

राजरानी, रंजना अरोड़ा
बी.पी. भारद्वाज, मधुलिका एस. पटेल
उषा शर्मा

प्रकाशन मंडल

मुख्य व्यापार प्रबंधक : गौतम गांगुली
मुख्य उत्पादन अधिकारी : अरुण चितकारा
उत्पादन सहायक : मुकेश गौड़

आवरण

अमित श्रीवास्तव

हमारे कार्यालय

प्रकाशन प्रभाग
एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016

फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फ्रीट रोड
होस्करे हल्ली एक्सटेंशन
बनाशंकरा III स्टेज
बेंगलुरु 560 085

फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014

फ़ोन : 079-27541446

सी. डब्ल्यू. सी. कैंपस
धनकल बस स्टॉप के सामने
पनिहटी
कोलकाता 700 114

फ़ोन : 033-25530454

सी. डब्ल्यू. सी. कॉम्प्लेक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781 021

फ़ोन : 0361-2674869

मूल्य

एक प्रति : ₹ 50

वार्षिक : ₹ 200



भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 39

अंक 1

जुलाई 2018

इस अंक में

संपादकीय		3
गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा में निरंतरता के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षक की तैयारी	रोमिला सोनी	5
बदलते परिप्रेक्ष्य में 'नई तालीम' शिक्षा पद्धति का वर्तमान स्वरूप	विरेन्द्र कुमार शिरीष पाल सिंह	14
राष्ट्रीय एकता और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका	चित्रा सिंह	26
उच्च शिक्षा की प्रवृत्तियाँ एवं चुनौतियाँ	निशात फ़ात्मा	34
विद्यालयी शिक्षा का समकालीन परिप्रेक्ष्य	ऋषभ कुमार मिश्र	40
ज्ञान के सृजन हेतु शिक्षण	सुनील कुमार गौड़	46
ग्रामीण समाज और अंतर्राष्ट्रीय स्कूल में आधुनिक शिक्षा	मनीष	57
भारतीय समाज के संदर्भ में बालकों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया का अध्ययन	कृष्ण कुमारी	70
उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर ज़िले में स्थित प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन	राजेश कुमार श्रीवास्तव	81
अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मज़दूरों के बच्चों के लिए शैक्षिक अवसर	हर्षवर्धन कुमार	92
समावेशी शिक्षा प्रतिमान में कक्षा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया	अखिलेश यादव	106
शिक्षक-प्रशिक्षकों के वृत्तिक विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता का अध्ययन	बृजेश कुमार पी.के.साहू	115



पढ़ेंगे
लिखेंगे
खेलेंगे
संग-संग

संपादकीय

भारत सरकार द्वारा समग्र शिक्षा के तहत स्कूली शिक्षा को पूर्णता में, अर्थात् पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से उच्चतर माध्यमिक शिक्षा स्तर तक के विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराना सुनिश्चित किया गया है जिसमें “सबको शिक्षा, अच्छी शिक्षा” पर जोर देते हुए गुणवत्तापूर्ण, समावेशी एवं न्यायोचित शिक्षा प्रत्येक बच्चे तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया है। इसी कड़ी में *भारतीय आधुनिक शिक्षा* का यह अंक भी इन्हीं मार्गदर्शी सिद्धांतों को अपनाते हुए विभिन्न लेखों एवं शोध पत्रों के आधार पर गुणवत्तापूर्ण विद्यालयी एवं शिक्षक शिक्षा को विस्तार देने की भूमिका निभाता है।

‘गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा में निरंतरता के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षक की तैयारी’ के अंतर्गत लेखिका ने बताया है कि गुणवत्तापूर्ण पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए किए गए पेशेवर विकास संबंधी प्रयास किस प्रकार अपना प्रभाव डालते हैं। अतः सभी पूर्व-प्राथमिक शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों, नियमित सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा वर्तमान एवं भविष्य के शिक्षकों के मददगारों, जो 3-6 वर्ष की आयु के बच्चों के साथ काम करते हैं, को एक नवीनतम गुणवत्तापूर्ण पाठ्यचर्या मुहैया कराने की आवश्यकता है। गाँधीजी द्वारा स्थापित ‘नई तालीम’ शिक्षा पद्धति के वर्तमान स्वरूप एवं स्थिति का जायजा लेते हुए लेख “बदलते परिप्रेक्ष्य में ‘नई तालीम’ शिक्षा पद्धति का वर्तमान स्वरूप” में यह बताने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान समय की शैक्षिक समस्याओं, रोजगार समस्याओं, मूल्यों एवं अनुशासन के गिरते स्तर, समाज में आर्थिक एवं

सामाजिक भेदभाव इत्यादि का समाधान करने तथा देश में सामाजिक एकरूपता, आपसी सद्भाव लाने के लिए तो हमें गाँधीजी की ‘नई तालीम’ शिक्षा पद्धति का पुनः अध्ययन करके नये समाज की जरूरतों के अनुकूल उसे नये तरीके से लागू करना होगा।

‘राष्ट्रीय एकता और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका’ पर आधारित लेख में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषाओं के मध्य हिंदी संपर्क भाषा के रूप में क्या योगदान दे सकती है? उसकी इस संभावित भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

मेक इन इंडिया और *डिजिटल इंडिया* जैसी योजनाओं को सफल बनाने के लिए हमारे विद्यार्थियों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा की आवश्यकता पर केंद्रित ‘उच्च शिक्षा की प्रवृत्तियाँ एवं चुनौतियाँ’ नामक लेख है। वहीं, लेख ‘विद्यालयी शिक्षा का समकालीन परिप्रेक्ष्य’ विद्यालय के बदलते संस्थागत स्वरूप पर चर्चा के साथ शुरू होता है। तदुपरांत विश्लेषित किया गया है कि विद्यालय अपने कलेवर को बदलने के बावजूद अपने क्रियाकरण में आज भी समाज से अलगाव को बनाए हुए है। लेख ‘ज्ञान के सृजन हेतु शिक्षण’ के अंतर्गत बताया गया है कि विद्यालय ज्ञानार्जन के ऐसे केंद्र बनें, जहाँ सतत नवीन ज्ञान का सृजन हो।

आज, पूरे भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया शहरीकृत या ‘रुर्बन’ क्षेत्रों में, ‘अंतर्राष्ट्रीय स्कूल’ बड़े स्तर पर खुल रहे हैं। ये स्कूल दावा करते हैं कि वे ‘आधुनिक’ शिक्षा प्रदान करते हैं। इन्हीं अंतर्राष्ट्रीय स्कूलों में अध्ययन करने वाले ग्रामीण बच्चों की अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया को समझने के लिए

शोध अध्ययन 'ग्रामीण समाज और अंतर्राष्ट्रीय स्कूल में आधुनिक शिक्षा' किया गया है। शोध अध्ययन के नतीजे बताते हैं कि स्कूल और बच्चे के सामाजिक अनुभवों के बीच एक विरोधाभास है; जो आधुनिकता से जुड़े मूल्यों और बच्चे के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के बीच संभावित तनाव के संदर्भ में बच्चे की अस्मिता के संकट का कारण बनता है।

शोध पत्र 'भारतीय समाज के संदर्भ में बालकों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया का अध्ययन' नारीवादी परिप्रेक्ष्य के आधार पर लड़कों के लैंगिक समाजीकरण का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। वहीं, 'उत्तर प्रदेश के गाजीपुर ज़िले में स्थित प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन' पर आधारित शोध पत्र गाजीपुर ज़िले के सात ब्लॉकों के 26 विद्यालयों के मात्रात्मक एवं गुणात्मक तथ्यों के आधार पर शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के पश्चात् प्रारम्भिक शिक्षा व्यवस्था की वास्तविक स्थिति को बताता है। जबकि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के आधार पर ही शोध पत्र 'अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों के लिए शैक्षिक अवसर' में झारखंड के रामगढ़ ज़िले के कोयला खनन क्षेत्र के अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों के लिए उपलब्ध शैक्षिक अवसरों एवं विद्यालयों के अवलोकन के आधार पर विद्यालयी शिक्षा की वास्तविक स्थिति को चित्रित करने का प्रयास करता है।

'समावेशी शिक्षा प्रतिमान में कक्षा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया' नामक शोध पत्र में

शोधक द्वारा बताया गया है कि आज भी ज्यादातर कक्षाओं में शिक्षक केवल व्याख्यान विधि का ही उपयोग करते हैं। वहीं, शासकीय विद्यालय में कक्षाएँ समावेशी शिक्षा के अनुकूल पाई गईं जबकि अशासकीय विद्यालय में कक्षाएँ समावेशी शिक्षा के प्रतिकूल पाई गईं। स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता हेतु अध्यापक-शिक्षकों की पेशेवर क्षमता का समय-समय पर उन्नयन आवश्यक है। इसी कड़ी में शोध पत्र 'शिक्षक-प्रशिक्षकों की वृत्तिक विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता का अध्ययन' में दर्शाया गया है कि वित्तपोषित एवं स्व-वित्तपोषित बी.एड. शिक्षक-प्रशिक्षकों द्वारा स्वयं का व्यक्तित्व, विद्यार्थी-शिक्षकों को समझना, सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र, पाठ्यक्रम, शिक्षा के क्षेत्र में दक्षता, क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता तथा शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान को प्राथमिकता दी गई।

आप सभी की प्रतिक्रियाओं की हमें सदैव प्रतीक्षा रहती है। आप हमें लिखें कि यह अंक आपको कैसा लगा। साथ ही, आशा करते हैं कि आप हमें अपने मौलिक तथा प्रभावी लेख, शोध पत्र, आलोचनात्मक समीक्षाएँ, श्रेष्ठ अभ्यास (Best Practices), पुस्तक समीक्षाएँ, नवाचार एवं प्रयोग, क्षेत्र अनुभव (Field Experiences) आदि प्रकाशन हेतु ई-मेल journal.ncert.dte@gmail.com पर या हमारे पते अकादमिक संपादक, अध्यापक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016 पर भेजेंगे।

गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा में निरंतरता के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षक की तैयारी

रोमिला सोनी*

इसमें कुछ भी छुपा नहीं है कि प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में काफी परिवर्तन आया है। इक्कीसवीं शताब्दी में 3-6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को सफलता के लिए आवश्यक कौशलों से परिपूर्ण करने के लिए क्या हमारे देश के प्री-स्कूल शिक्षक अथक परिश्रम कर रहे हैं? नर्सरी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों (एन.टी.टी.आई.) में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा शिक्षक और विद्यार्थी-शिक्षक प्रारंभिक कक्षाओं के 3-6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के साथ व्यवहार करने के लिए क्या आवश्यक सही शिक्षण पद्धतियों से अवगत हैं? पूर्व-प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में गुणवत्तापूर्ण जन बल तैयार करने और सुशिक्षित प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षाविदों को वहाँ बनाए रखने से संबंधित अनेक चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों से निपटना तब तक संभव नहीं है, जब तक सतत सेवाकालीन प्रशिक्षण और कार्यशालाओं का आयोजन न किया जाए, जिनका उद्देश्य यह मार्गदर्शन करना हो कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पाठ्यचर्या को कैसे लागू किया जाए। ऑगनवाडियों, प्ले स्कूलों, प्राथमिक स्कूलों और निजी स्कूलों से जुड़े प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा में काम करने वाले हितधारकों की गुणवत्ता इस लेख का प्रमुख मुद्दा है। इस लेख में लेखिका ने बताया है कि गुणवत्तापूर्ण पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए किए गए पेशेवर विकास संबंधी प्रयास किस प्रकार अपना प्रभाव डालते हैं और प्री-स्कूल तथा पूर्व-प्राथमिक शिक्षकों के कौशलों, नजरिये और बच्चों के प्रति उनके व्यवहार में सार्थक परिवर्तन लाते हैं। प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के विस्तारण एवं सुधार में प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के जन बल की आधारभूत भूमिका है। अतः सभी पूर्व-प्राथमिक शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों, नियमित सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा वर्तमान एवं भविष्य के शिक्षकों के मददगारों, जो 3-6 वर्ष की आयु के बच्चों के साथ काम करते हैं, को एक नवीनतम गुणवत्तापूर्ण पाठ्यचर्या मुहैया कराने की आवश्यकता है। इस लेख में लेखिका ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा, प्री-स्कूल तथा ई.सी.ई (अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन) शब्दों का प्रयोग किया है।

औपचारिक शिक्षा में 3-6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को जाता है। इसका बच्चों के विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव के नामांकन और सहभागिता के लिए प्रारंभिक पड़ता है और यह प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण बाल्यावस्था शिक्षा को अत्यंत महत्वपूर्ण समझा के लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देती

है। तंत्रिका विज्ञान के क्षेत्र में और विशेष रूप से मस्तिष्क पर हुए अनुसंधानों ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि जीवन के इन प्रारंभिक वर्षों में मस्तिष्क में अंतर्ग्रंथीय संबंधों का निर्माण होता है।

यह जाना-माना तथ्य है कि प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा कार्यक्रम की गुणवत्ता उतनी ही अधिक हो सकती है, जितनी पढ़ाने वाले पूर्व-प्राथमिक विद्यालय शिक्षक की। पूर्व-प्राथमिक शिक्षक/शिक्षिका कितने योग्य हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होंने अपनी भूमिका या कार्य के लिए अपने आपको किस प्रकार तैयार किया है। पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (ई.सी.ई.) की निरंतरता बनाए रखने में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। तथापि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है कि शिक्षकों को किस तरीके से बच्चों को संभालने के लिए तैयार किया जाए और प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा को किस प्रकार पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में लागू किया जाए।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन और विभिन्न हितधारकों के बीच संबंध बनाए रखने में शिक्षक की मुख्य भूमिका होती है। ई.सी.ई. कार्यक्रम अनेक कारणों से प्रभावित होता है, जैसे — ई.सी.ई. कार्यक्रम की योजना बनाना, दाखिला करना और आकलन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल होना आदि। प्रस्तुत लेख में विद्यालय-पूर्व शिक्षा केंद्रों में कार्य करने वाले शिक्षकों की गुणवत्ता पर चर्चा की गई है।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा स्तर पर 'कोई भी पढ़ा सकता है' और 'कोई भी पूर्व-प्राथमिक शिक्षा स्तर

के बच्चों को संभाल सकता है' वाला नज़रिया ही शिक्षकों की गुणवत्ता को बाधित करने का सबसे बड़ा कारण है। अनेक व्यक्ति या संस्थान इसके प्रत्युत्तर में कहते हैं कि प्रारंभिक कक्षाओं में कोई निश्चित पाठ्यचर्या तो होती नहीं है, अतः कोई भी व्यक्ति शिक्षक हो सकता है। इसी का परिणाम है कि कम योग्यता प्राप्त शिक्षक भी बिना किसी ई.सी.ई. योजना के पूर्व-प्राथमिक शिक्षा केंद्र चलाते हैं। प्रत्येक बच्चे के सीखने के लिए ई.सी.ई. ही प्रथम सीढ़ी और बुनियादी कदम होती है, लेकिन प्रशासनिक और अन्य वित्तीय कारणों से इस अवस्था को अनिवार्य अवस्था का आधिकारिक दर्जा नहीं दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप ई.सी.ई. के क्रियान्वयन में अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए संस्था/विद्यालय आधारित नीतियाँ ही काम कर रही हैं।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के मार्ग में दूसरा बाधक तत्व है — 'ई.सी.ई. शिक्षकों के लिए तेज़ी से उभरते प्रशिक्षण संस्थान' जो इस कार्यक्रम की अपेक्षाओं को पूरा किए बिना प्रशिक्षण दे रहे हैं। भावी शिक्षकों के लिए बनाई गई प्रशिक्षण पाठ्यचर्या उस निर्माण स्तर पर ज़मीनी वास्तविकताओं से मेल ही नहीं खाती, जहाँ इन शिक्षकों को कार्य करना होता है। विद्यालय-पूर्व शिक्षा केन्द्रों में शिक्षकों की नियुक्ति एक दूसरा संदेहास्पद विषय है — शिक्षकों की नियुक्ति के लिए स्पष्ट नीति के अभाव में या तो अयोग्य या आवश्यकता से अधिक पेशेवर योग्यता वाले (बी.एड./एम.एड./पी.एच.डी.) शिक्षक नियुक्त कर लिए जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप कक्षा में

बच्चों की आयु के अनुसार उपयुक्त बातचीत तथा गतिविधियाँ नहीं हो पाती। सेवा-पूर्व ई.सी.ई. पाठ्यचर्या शिक्षकों की आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर रही है, क्योंकि विद्यालयी शृंखला में ई.सी.ई. के ऐच्छिक होने के कारण पाठ्यचर्या की समीक्षा और संशोधन को महत्व नहीं दिया जाता। विद्यार्थी-शिक्षकों के प्रशिक्षकों (टीचर एजुकेटर) का भी अपने पेशेवर और शैक्षिक कौशलों का विकास करने के लिए नियमित उन्मुखीकरण नहीं होता है। ई.सी.ई. शिक्षकों की कार्यावधि भी शिक्षकों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।

इस लेख में लेखिका ने कुछ पहलुओं पर चर्चा की है, जैसे — शिक्षा प्रणाली की शृंखला के पहले कदम के रूप में अच्छी गुणवत्तापूर्ण ई.सी.ई. को उसकी विशिष्ट भूमिका तथा शिक्षा में निरंतर विकास के लिए संसाधन के रूप में कैसे देखा जा सकता है।

इस लेख के उद्देश्य हैं —

1. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा अवस्था में गुणवत्ता बनाए रखने के लिए सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक तैयारी कार्यक्रमों के संवर्द्धन के लिए तरीके सुझाना।
2. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा, शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम से संबंधित मसलों और मुद्दों पर चर्चा करना।

ई.सी.ई. शिक्षकों की सेवा-पूर्व शिक्षक शिक्षा और सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा उनका पेशेवर विकास

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन के लिए सभी शिक्षकों का ई.सी.ई. और 3-6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को सँभालने व देखभाल में पेशेवर प्रशिक्षण होना चाहिए। कई राज्य और केंद्र

प्रशासित प्रदेश ऐसे हैं, जहाँ शिक्षकों के सेवा-पूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए ई.सी.ई. प्रशिक्षण संस्थानों और पाठ्यचर्या का अभाव है जिसके कारण प्रारंभिक कक्षाओं में ई.सी.ई. पाठ्यचर्या के प्रभावशाली क्रियान्वयन में बाधा पड़ती है। ई.सी.ई. के लिए शिक्षक प्रशिक्षण का ऐसा प्रारूप बनाने की आवश्यकता है, जिसमें शिक्षक संवेदीकरण को अधिक प्राथमिकता मिले। यह ई.सी.ई. पाठ्यचर्या के प्रभावशाली क्रियान्वयन और बच्चों के अनुकूल आकलन प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक शर्त है। केवल शिक्षक ही नहीं, बल्कि विभिन्न स्तरों पर कार्य करने वाले पदाधिकारियों को भी ई.सी.ई. पाठ्यचर्या क्रियान्वयन में अंतर्वेशन के मूल्य को ग्रहण करना होगा।

इस क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी लोग और संस्थान इस बात से सहमत हैं कि ई.सी.ई. शिक्षक बनने के लिए बाल विकास तथा ई.सी.ई. का मूलभूत ज्ञान अनिवार्य है। इसके अंतर्गत ई.सी.ई. क्षेत्र के इतिहास का ज्ञान, ई.सी.ई. क्षेत्र में काम करने वाले संस्थान, शिक्षकों की श्रेणियों (आँगनवाड़ी कार्यकर्ता, 3-6 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को सँभालने वाले ई.सी.ई. शिक्षक) और स्वयं बच्चे का ज्ञान शामिल है। इस ज्ञान को बच्चों की आयु व विकास के आधार पर उपयुक्त खेल आधारित ई.सी.ई. पाठ्यचर्या, भौतिक और सामाजिक संसाधनों को सुनियोजित करने के तरीकों और सबसे अधिक शिक्षण को प्रारंभिक कक्षाओं की क्रियाओं के साथ समेकित करना ज़रूरी है। ई.सी.ई. की तैयारी के लिए दोनों क्षेत्रों — सेवा-पूर्व एवं सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों — की

ओर ध्यान देना आवश्यक है। सेवा-पूर्व प्रशिक्षण के लिए ई.सी.ई. शिक्षाविदों को विषय-वस्तु और शिक्षण विधि, दोनों का पूर्व ज्ञान और समझ होनी चाहिए। तभी वे आगे विद्यार्थी-शिक्षकों को, जो ई.सी.ई. शिक्षक बनने वाले हैं और 3–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को संभालने के लिए ज़िम्मेदार बनने वाले हैं, शिक्षा प्रदान कर सकते हैं।

सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा के लिए आधारभूत ज्ञान से आगे भी कुछ करना ज़रूरी है, क्योंकि उन्हें ऐसे 3–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के साथ कार्य करना है, जिनके सीखने के तरीकों और बाल विकास में भिन्नता होती है। किसी भी स्तर पर शिक्षण की तैयारी एक लंबी प्रक्रिया है, जो एक व्यक्ति के पूरे सेवाकाल में चलती रहनी चाहिए। विशेषज्ञों के लिए यह विचारणीय बात है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा शिक्षक-शिक्षा/प्रशिक्षण संस्थान के ई.सी.ई. शिक्षक/प्रशिक्षकों के सेवा-पूर्व एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण के शिक्षण मानकों को ऊँचा उठाया जाए। सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए ई.सी.ई. के सीखने के माहौल और प्रारंभिक कक्षा प्रक्रियाओं को बेहतर बनाने के लिए केवल शिक्षकों पर निर्भर रहना ही पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि पूरी प्रणाली को प्रेरित करने की आवश्यकता होगी। ई.सी.ई. शिक्षकों के पेशेवर विकास का उद्देश्य ज्ञान, कौशल और रुचियों को आगे बढ़ाना है तथा 3–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को पढ़ाने व उनके माता-पिता तथा परिवारों की मदद करने के प्रयासों में उनके कार्यों में वृद्धि करना है। इससे व्यक्तियों

और संस्थानों में चल रही पेशेवर विकास की संस्कृति को बढ़ावा मिलता है।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में सेवा-पूर्व शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम

सेवा-पूर्व शिक्षकों की तैयारी के लिए ई.सी.ई. शिक्षक संस्थानों को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि भावी ई.सी.ई. शिक्षकों को पढ़ाने और प्रशिक्षित करने वाले शिक्षाविद् अपने विषय में पूर्णतया योग्य हों ताकि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा शिक्षक शिक्षा संस्थानों से निकलने वाले शिक्षक भी सुप्रशिक्षित, ज्ञान व विश्वास से परिपूर्ण हों। ई.सी.ई. में सेवा-पूर्व कार्यक्रमों को समझने के लिए बहुत कम अध्ययन हुए हैं। विद्यार्थी-शिक्षक समेकित कक्षाएँ किस प्रकार संभालें, कार्यक्रम में यह शामिल किया जाना ज़रूरी है। प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए शिक्षकों की तैयारी पर अंबेडकर विश्वविद्यालय द्वारा किया गया अध्ययन (2015) स्पष्ट रूप से राज्यों में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा शिक्षक शिक्षा संस्थानों की स्थिति पर प्रकाश डालता है। कुछ राज्यों विशेषकर उत्तरी और उत्तर पूर्वी राज्यों में तो शिक्षक शिक्षा संस्थानों तक कोई पहुँच ही नहीं है। कुछ राज्यों, जैसे — महाराष्ट्र और गुजरात जहाँ पहले बड़ी संख्या में ई.सी.ई. शिक्षक संस्थान थे, वहाँ भी माँग की कमी के कारण इनकी संख्या कम होती जा रही है। सभी ई.सी.ई. शिक्षक शिक्षा संस्थानों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी पाठ्यचर्या, कोर्स डिज़ाइन का पुनरवलोकन कर तथा उसे अधिक व्यावहारिक बनाकर स्वयं में पूरी तरह बदलाव लाएँ, तभी प्रभावशाली और सुप्रशिक्षित शिक्षक तैयार हो सकेंगे।

सेवा-पूर्व ई.सी.ई. शिक्षक कार्यक्रमों के प्रमुख मुद्दे व समस्याएँ

- विद्यार्थी-शिक्षकों को सैद्धान्तिक ज्ञान को वास्तविक कक्षा स्थितियों में क्रियान्वित करने में कठिनाई होती है।
- अनभिज्ञ होने के कारण विद्यार्थी-शिक्षक आमतौर पर बच्चों के साथ व्यवहार करते समय व्यग्र हो जाते हैं और ई.सी.ई. पाठ्यचर्या छोड़कर चले जाते हैं।
- अधिकांश ई.सी.ई. शिक्षाविद् आधुनिक और नए घटनाक्रमों या सुधारों से परिचित नहीं होते।
- ई.सी.ई. पाठ्यचर्या का समेकन और अद्यतन नहीं होता।
- ई.सी.ई. में जो पढ़ाया जाता है, वह प्रारंभिक कक्षाओं में होने वाले व्यवहार से भिन्न होता है।
- ज्ञान के उच्च संस्थानों, जैसे — विश्वविद्यालय आदि की ई.सी.ई. शिक्षक शिक्षा में अल्प सहभागिता।

सेवा-पूर्व ई.सी.ई. शिक्षक संस्थानों के लिए सुझाव

- नियमित रूप से ई.सी.ई. पाठ्यचर्या की समीक्षा करना।
- तंत्रिका विज्ञान में सामयिक शोध, शिक्षण में रचनावादी दृष्टिकोण, सामाजिक तत्परता एवं उद्गामी साक्षरता के महत्व, सामाजिक समावेशन आदि के संदर्भ में ज्ञान को अद्यतन बनाना।
- पाठ्यचर्या की संरचना लचीली हो, जिसमें शिक्षाविदों के लिए यह प्रावधान हो कि वे आवश्यकता और संदर्भ अनुसार अपनी पाठ्यचर्या स्वयं विकसित या अनुकूलित कर सकें।

- सभी बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चुनी हुई और संवेदनशील कार्यनीतियाँ।
- उपयोगकर्ताओं के लिए स्पष्ट एवं व्यापक ई.सी.ई. पाठ्यचर्या दिशा-निर्देश।
- ई.सी.ई. में ठोस शैक्षणिक सिद्धांतों वाले सुप्रशिक्षित और अनुभवी शिक्षक शिक्षाविद्।
- भावी शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए ई.सी.ई. शिक्षक शिक्षाविदों के लिए पेशेवर विकास के व्यापक कार्यक्रम।
- व्यवहार और सिद्धांत में मेल हो ताकि विद्यार्थी-शिक्षकों को 3–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के विकास और शिक्षा में मदद मिल सके।
- ई.सी.ई. को शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की सीमा में लाने के लिए सरकार द्वारा पहल करने की आवश्यकता है।

सेवाकालीन ई.सी.ई. शिक्षक कार्यक्रम

सेवाकालीन कार्यक्रमों में संसाधन सामग्री के साथ कार्य करना, ई.सी.ई. के सत्रों में उपस्थित रहना, 'यू ट्यूब' एवं अन्य आई.सी.टी. संसाधनों पर शिक्षण पद्धतियों और कार्यप्रणालियों पर फ़िल्म देखना, ई.सी.ई. अध्ययन समूह का निर्माण करना या अधिक अनुभवी शिक्षकों का अवलोकन करना आदि शामिल हो सकते हैं। ई.सी.ई. कार्यशालाओं का आयोजन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि शिक्षक क्या जानना चाहते हैं और वे कहाँ और किन कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं।

सभी शिक्षकों को अपनी क्षमताओं और आवश्यकताओं का आकलन करने के लिए आत्म-विश्लेषण करना चाहिए। इससे

उन्हें स्वयं अपनी सेवाकालीन उपचारात्मक गतिविधियाँ विकसित करने में सहायता मिलेगी। विद्यालय-पूर्व शिक्षा केन्द्रों को उपचारात्मक कार्यशालाएँ आयोजित करनी चाहिए और विशेषज्ञों को बुलाना चाहिए।

सेवाकालीन कार्यशालाएँ आयोजित करते समय शिक्षकों की रुचियों और आवश्यकताओं को आँकना बहुत ज़रूरी है। विद्यालय-पूर्व शिक्षा केन्द्रों को चाहिए कि वे शिक्षकों को कक्षा अधिगम से संबंधित समस्याओं पर खुलकर चर्चा करने की स्वतंत्रता दें। इससे शिक्षकों की प्रतिपुष्टि प्राप्त करने में बहुत सहायता मिलेगी। लगातार निरीक्षण और प्रतिपुष्टि के अभाव में कोई भी सेवाकालीन प्रशिक्षण सफल नहीं हो सकता। निरीक्षकों या अधिकारियों को सेवाकालीन प्रशिक्षण का मूल्यांकन करते रहना चाहिए, तभी होने वाला सेवाकालीन प्रशिक्षण शिक्षकों की आवश्यकताओं को पूरा कर पाएगा और उनकी उपस्थिति सार्थक हो सकेगी।

सेवाकालीन कार्यक्रमों के प्रमुख मुद्दे व समस्याएँ

- यद्यपि ई.सी.ई. शिक्षकों का बच्चों के जीवन पर गहरा प्रभाव होता है, तथापि उन्हें एक व्यावसायिक होने का सम्मानजनक ऊँचा दर्जा नहीं मिलता।
- विद्यार्थी-शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में जो पढ़ते हैं और इंटर्नशिप के दौरान जो अभ्यास/प्रेक्टिस करते हैं, उसमें मेल न होना।
- ई.सी.ई. संस्थानों की कोई नवीन (अद्यतनीकृत) पाठ्यचर्या न होना।

- प्रारंभिक कक्षाओं में सही ढंग से कार्य करने के लिए बड़ी मात्रा में व्यावहारिक ज्ञान का अभाव।

सेवाकालीन ई.सी.ई. कार्यक्रम के लिए सुझाव

- सभी शिक्षकों के मज़बूत और कमज़ोर पक्ष होते हैं। मज़बूत पक्षों को और आगे बढ़ाया जा सकता है और कमज़ोरियों पर पेशेवर विकास कार्यक्रम द्वारा काबू किया जा सकता है।
- शिक्षकों में सकारात्मक आत्म-अवधारणा विकसित करने के प्रयासों की आवश्यकता है ताकि वे बच्चों के लिए अपनी चिंताओं को साझा कर सकें। सकारात्मक आत्म-अवधारणा एक सकारात्मक विद्यालय-पूर्व शिक्षा केंद्र का वातावरण बनाने में शिक्षक की सहायता करती है।
- शिक्षकों को ज्ञान और कौशलों में वृद्धि करने के लिए सूचना के विभिन्न स्रोतों को तलाशना चाहिए।
- पूर्व-प्राथमिक शिक्षा/ई.सी.ई. केंद्रों को अपनी आय का कुछ अंश किसी भी रूप में कर्मचारियों के विकास में लगाना चाहिए।
- विद्यालय-पूर्व शिक्षा केन्द्रों को अपनी आवश्यकतानुसार अपने-अपने सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए, दूसरे संस्थान गुणवत्ता बनाए रखने के लिए सहायता के लिए पेशेवर संगठनों पर निर्भर कर सकते हैं जो उन्हें कार्यशालाओं/सम्मेलनों/पत्रिकाओं या अन्य प्रकाशित सामग्री के रूप में मिल सकती है।
- कुछ विद्यालय अपने शिक्षकों का नामांकन अल्पावधि ई.सी.ई. कोर्स में कराते हैं ताकि उनके विद्यालय-पूर्व शिक्षा केंद्र भली प्रकार प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकें।

- विद्यालय चाहे कर्मचारियों के पेशेवर विकास के लिए साधन उपलब्ध कराएँ या नहीं, प्री-स्कूल शिक्षकों को अपने पेशेवर विकास के लिए स्वयं उत्तरदायी होना चाहिए। शिक्षक सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यशालाओं में स्वयं को व्यस्त रख सकते हैं, अपनी अनौपचारिक शिक्षा जारी रख सकते हैं और स्वयं को ई.सी.ई. में अद्यतन रख सकते हैं।
- शिक्षक भर्ती प्रक्रिया सही मायने में निष्पक्ष होनी चाहिए।
- अभिभावकों और समुदाय को परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति संवेदनशील बनाना होगा।
- राष्ट्रीय ई.सी.सी.ई. पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2013 के अनुसार परिकल्पित ई.सी.ई. पाठ्यचर्या के मुद्दे और आकलन प्रक्रिया में अपेक्षित परिवर्तन आशाजनक है और शैक्षणिक तथा प्रशासनिक कामकाज के सभी स्तरों पर उन्हें एक नयी दृष्टि की आवश्यकता है। समेकित और बाल-केंद्रित शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने और पाठ्यचर्या की अपेक्षाओं को पूरा करने के प्रयास करने की ज़रूरत है।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा प्रणाली के लिए सुझाई गई योजनाओं के निहितार्थ

सभी विद्यालयों में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा केंद्र स्तर पर दाखिला

शिक्षा का अधिकार अधिनियम में पूर्व-प्राथमिक कक्षाएँ चलाने वाले गैर सहायता-प्राप्त निजी विद्यालयों में विद्यालय-पूर्व शिक्षा स्तर पर 25 प्रतिशत दाखिले का प्रावधान किया गया है। इस माँग की पूर्ति के लिए प्रशिक्षित नर्सरी शिक्षकों

की आवश्यकता है, अन्यथा अप्रशिक्षित या उच्च कक्षाओं के लिए प्रशिक्षित शिक्षक (बी.एड.) द्वारा विद्यालय-पूर्व शिक्षा की कक्षाएँ पढ़ाए जाने का सिलसिला जारी रहेगा। इस प्रकार के प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध करानी होगी, वरना यथास्थिति बनी रहेगी। इसके अतिरिक्त, शिक्षा का अधिकार अधिनियम में कहा गया है कि 3-6 वर्ष की आयु के बच्चों को विद्यालय के लिए तैयार करने के लिए राज्य ई.सी.ई. केंद्र खोल सकते हैं। सीखने और जीवन की नींव के महत्वपूर्ण घटक होने के कारण, विशेष रूप से समाज के कमजोर और वंचित वर्गों के बच्चों के लिए, राज्यों के लिए यह अनिवार्य होगा कि वे ई.सी.ई. शिक्षा को अनिवार्य बनाएँ। इसके लिए उच्च स्तरीय निर्णय लिए जाने आवश्यक हैं।

गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए सामान्य दिशानिर्देश

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा विकसित राष्ट्रीय ई.सी.सी.ई. पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2013, प्रारंभिक शिक्षा व्यवहार के निर्देश देती है, किंतु क्या सभी विद्यालय-पूर्व शिक्षा या विद्यालय इसके बारे में जानते हैं? जब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा ई.सी.सी.ई., 2013 क्रियान्वित करने की बात आती है तो आश्चर्य होता है कि अभी भी यह ज़मीनी स्तर तक नहीं पहुँच पाया है। मुश्किल से यह सरकारी विद्यालय-पूर्व शिक्षा शिक्षकों तक पहुँचा है, निजी क्षेत्र तो इससे बिलकुल अनजान है। यदि वे कुछ जानते भी हैं तो क्या वे यह जानते हैं कि इसे प्रारंभिक कक्षाओं तक कैसे पहुँचाया जाए। हमें

अभी भी विश्वविद्यालय आधारित पूर्व-प्राथमिक शिक्षा शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों को विद्यालय-पूर्व शिक्षा शिक्षकों और प्राथमिक शिक्षकों के कार्यक्रमों से एकीकृत करने की ज़रूरत है। शिक्षकों की चिंता का केवल एक विषय है कि विद्यालय-पूर्व शिक्षा में 3–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को 'क्या' सीखना है। किंतु सबसे महत्वपूर्ण बात तो 'शिक्षण विधि' है, यानी कक्षाओं में शिक्षक पाठ्यचर्या को 'कैसे' सिखा रहे हैं। इसका अर्थ है कि विद्यालय-पूर्व शिक्षा शिक्षकों को 3–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों की रुचियों की दिशा में ध्यान केंद्रित करने की ज़रूरत है, न कि इस ओर कि बच्चों को ठीक-ठीक कितनी विषय-वस्तु पढ़ानी है।

शिक्षकों की सकारात्मक आत्म-छवि

पेशेवर विकास सभी प्रकार की गतिविधियों पर आधारित होता है, जो ज्ञानाधार, कौशल समूह या प्रयोग किए गए व्यावहारिक दृष्टिकोण को बढ़ाने का प्रयास करता है, जैसे — एक शिक्षक प्री-स्कूल शिक्षा और किंडरगार्डन से तीसरी कक्षा तक के शिक्षण या शैक्षणिक सहायता आदि सेवाओं में व्यस्त रहता है। विद्यालय-पूर्व शिक्षा केंद्र के शिक्षकों के लिए आवश्यक व्यक्तिगत गुणों की सूची बनाई जा सकती है, परंतु सबसे महत्वपूर्ण गुण है शिक्षक का बच्चों को पसंद करना और उनका आदर करना। यदि शिक्षक बच्चों को पसंद करता है तो और भी लाभकारी गुण उसके व्यक्तिगत दर्शन के अंग बन जाएंगे। बच्चों को प्यार करने और आदर करने वाला ई.सी.ई. शिक्षक एक ऐसा व्यक्ति बन जाएगा जो धीर, सहनशील और स्वतंत्रता, आत्मविश्वास,

आत्मसम्मान और योग्यता की भावनाओं के प्रति उत्सुक होगा। यदि शिक्षक को यह जानना है कि बच्चे कब किसी विशिष्ट अनुभव के लिए तैयार होते हैं, तो उसके लिए विकास के तरीकों और विकास की अवस्थाओं के मूल्यांकन के तरीकों का ठोस ज्ञान बहुत ही महत्वपूर्ण है।

स्वयं शिक्षक की इस पेशे में रुचि

तीन से छह वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के साथ काम करने वाले व्यक्ति को अपनी सोच और व्यवहार में अनुकूलनीय और लचीला होना चाहिए। विद्यालय-पूर्व शिक्षा केंद्र की मुश्किलों का सामना करने की योग्यता प्राप्त करना आसान नहीं है। यदि शिक्षक की सोच बच्चों, उनके अभिभावकों और अपने काम को पसंद करने पर आधारित है, तो शिक्षक को अपेक्षाकृत तनावमुक्त और स्वीकारने के रवैये को अपनाना सरल होगा, क्योंकि 3–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के साथ काम करने के लिए यह अति आवश्यक है। इसका अर्थ यह नहीं कि बच्चों को उनके सभी कामों में खुली छूट दे दी जाए।

बच्चों के साथ पेशेवर रूप से काम करने वाले शिक्षक भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि से आते हैं। बाल विकास और मार्गदर्शन के ज्ञान में विभिन्न क्षेत्रों के तथ्य शामिल होते हैं। इनमें से कुछ क्षेत्र हैं — मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, चिकित्साशास्त्र आदि। इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट कार्यकर्ता जिनकी पहले किसी दूसरे क्षेत्र में विशेष रुचि थी, वे कहते हैं कि बच्चों के पालन-पोषण के विकसित तरीकों का विशेष महत्व है।

निष्कर्ष

प्रारंभिक शिक्षा की गुणवत्ता मुख्य रूप से पूर्व-प्राथमिक विद्यालय/केंद्र में होने वाले शिक्षण-अधिगम पर निर्भर करती है। विद्यालय-पूर्व शिक्षा केंद्रों और प्रारंभिक प्राथमिक कक्षाओं में मिलने वाली व्यवस्थित सहायता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। मेरे विचार में यदि उपरोक्त चर्चित मुद्दों और चुनौतियों का समाधान नहीं किया जाता है तो इससे सेवा-पूर्व विद्यार्थी-शिक्षकों का विश्वास कम हो सकता है और उनके पढ़ाने और सीखने की योग्यता में रुकावट आ सकती है। यदि शिक्षकों और शिक्षक प्रशिक्षकों की धारणाओं में परिवर्तन लाना है, तो उन्हें बेहतर रूप से तैयार होने की ज़िम्मेदारी का आश्वासन स्वयं देना चाहिए। तभी शिक्षक तैयारी अर्थपूर्ण, संतोषजनक और अधिक व्यावहारिक हो सकती है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए सबसे पहला महत्वपूर्ण कदम होगा कि सभी बच्चों के लिए विद्यालय-पूर्व शिक्षा अवस्था को अनिवार्य कर दिया जाए। दूसरे, सभी प्रशिक्षण संस्थानों की सुचारु रूप से मॉनिटरिंग की व्यवस्था हो। तीसरे, सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों को अलग-अलग न देखकर एकल रूप में देखा जाए ताकि विद्यालय स्तर पर सिद्धांत और व्यवहार के बीच के अंतर को कम किया जा सके। शिक्षक शिक्षाविदों की पेशेवर प्रतिष्ठा पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, उन्हें पाठ्यचर्या निर्माण और अन्य कार्यशालाओं में शामिल किया जाए। गुणवत्तापूर्ण ई.सी.ई. के सपने को साकार करने के लिए विद्यालय-पूर्व शिक्षा केंद्रों के शिक्षकों को सेवा-पूर्व और सेवाकालीन प्रशिक्षण पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है ताकि संपूर्ण प्रणाली को सुधारा जा सके।

संदर्भ

- अंबेडकर यूनिवर्सिटी. 2015. *प्रिपेयरिंग टीचर्स फॉर अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन*. अंबेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली एंड नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन, दिल्ली. पृ. 25-86.
- बनार्ड स्पोदेक, डेविस साराशो, 1981. *फाउंडेशंस ऑफ अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन—टीचिंग श्री, फॉर एंड फ़ाइव ईयर ओल्ड चिल्ड्रन टूवर्ड्स प्रोफेशनलिज्म*. प्रेंटिस हॉल, इंगलीवुड क्लिफ्स, न्यू जर्सी.
- महिला एवं बाल विकास मंत्रालय. 2013. *राष्ट्रीय ई.सी.सी.ई. पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2013*. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- शैरिडयन एम सूसेन, एडवर्ड्स, मार्विन ए क्रिस्टीन और नौशे एल. लिज़ा. 2009. *प्रोफेशनल डेवलपमेंट इन अर्ली चाइल्डहुड प्रोग्राम्स—प्रोसेस, इश्यूज एंड रिसर्च नीड्स*.

बदलते प्ररिप्रेक्ष्य में 'नई तालीम' शिक्षा पद्धति का वर्तमान स्वरूप

विरेन्द्र कुमार*
शिरीष पाल सिंह**

इस लेख में गाँधीजी द्वारा वर्धा में स्थापित 'नई तालीम' पद्धति की वर्तमान स्थिति एवं शैक्षणिक गतिविधियों का वर्णन किया गया है। इसमें गाँधीजी के शैक्षिक दर्शन की दूरदर्शिता, समवाय पद्धति, हाथ, मस्तिष्क तथा हृदय के द्वारा बालक के सर्वांगीण विकास का वर्णन किया गया है। इस लेख में यह बताने का प्रयास किया गया है कि गाँधीजी ने देश की आजादी के पहले ही यह अनुमान लगा लिया था कि शिल्प आधारित शिक्षा ही भारतीय परिस्थितियों में सफल सिद्ध हो सकती है। अतः उन्होंने शिल्प पर केंद्रित क्रिया आधारित शिक्षा पर बल दिया है। वर्तमान समय की शैक्षिक समस्याओं, रोजगार समस्याओं, मूल्यों एवं अनुशासन के गिरते स्तर, समाज में आर्थिक एवं सामाजिक भेदभाव इत्यादि पर ध्यान दें तो हम यह कह सकते हैं कि इन सबके पीछे कहीं-न-कहीं आधुनिक शिक्षा अधिक ज़िम्मेदार है। अतः यदि हमें देश में सामाजिक एकरूपता, आपसी सद्भाव लाना है तो हमें गाँधीजी की 'नई तालीम' पद्धति का पुनः अध्ययन करके नये समाज की ज़रूरतों के अनुकूल उसे नये तरीके से लागू करने की आवश्यकता है।

प्रस्तावना

अंग्रेजों द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति पुस्तकीय थी, जो हमारे देश के अनुकूल नहीं थी। इस शिक्षा पद्धति ने हमारे देश के विद्यार्थियों को वास्तविक जीवन से कोसों दूर कर दिया था। गाँधीजी ने इसे गहराई से अनुभव कर व्यावहारिक, वास्तविक एवं देश के अनुरूप शिक्षा पद्धति बनाने के बारे में सोचा, जो उनके लेखों, विचारों एवं प्रयोगों से प्रमाणित होता है। गाँधीजी के विचार के अनुसार मानव-जीवन विभिन्न वृत्तियों और शक्तियों का असंबद्ध संग्रह नहीं है,

वह एक पूर्ण इकाई है। मानव जीवन के प्रत्येक कार्य का दूसरे व्यवहारों के साथ अन्योन्याश्रित संबंध है। शिक्षा के क्षेत्र में गाँधीजी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरासत 'बुनियादी शिक्षा' अथवा 'नई तालीम' रही है, जो वस्तुतः उनके जीवन दर्शन का प्राण-तत्व था। उनके लिए शिक्षा मात्र साक्षरता नहीं थी, बल्कि मन, शरीर और आत्मा का संपूर्ण विकास था। यह शिक्षा शिल्प पर आधारित थी, जो उनके अहिंसा के आदर्श के अनुकूल थी। महात्मा गाँधी के अनुसार शिल्प शिक्षा लोगों को शोषण, स्वार्थ तथा अनाधिकार

* शोधार्थी (शिक्षा विद्यापीठ), महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गाँधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

** सह प्रोफेसर (शिक्षा विद्यापीठ), महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गाँधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

ग्रहण से बचाएगी। शिल्प आधारित शिक्षा से नए युग का प्रवर्तन होगा, जिसमें जाति एवं सांप्रदायिक घृणा नहीं रहेगी तथा शोषण भी समाप्त हो जाएगा। शिल्प शिक्षा प्रत्येक कामकार के व्यक्तित्व को कायम ही नहीं रखेगी, बल्कि सहयोग और समूह भावना का भी विकास करेगी।

शास्त्रों ने जीवन-वृत्ति को तीन स्वरूपों में देखा — ज्ञान, कर्म, और भक्ति। ये तीनों एक-दूसरे के संपर्क और संसर्ग से जाग्रत होते रहते हैं। गाँधीजी की शिक्षा पद्धति कर्म और ज्ञान के अनन्य संबंध को मानकर चलती है, जिसे 'समवाय' कहते हैं। समवाय के माध्यम से ही हम प्रकृति से भी कुछ सीखते हैं। ज्ञान और कर्म को हम अलग नहीं कर सकते, क्योंकि कर्म द्वारा ही ज्ञान भी प्राप्त होता है। उक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु गाँधीजी ने उद्योग को ही समवाय का केंद्र बनाने पर अपनी सहमति प्रकट की। "समता को बुनने वाला एवं कर्म और संयास को बुनने वाला, अर्थात् कर्म और ज्ञान का अभिन्न संबंध स्थापित करने वाला ही समवाय है।" (राय, 2010)

गाँधीजी का मानना था — "मनुष्य का सच्चा शिक्षक मनुष्य स्वयं ही है, अनुभव सबसे बड़ी पाठशाला है।" (त्रिपाठी और त्रिपाठी 2013)

‘नई तालीम’ शिक्षा पद्धति की नींव

स्वयं गाँधीजी के शब्दों में — "वर्धा का 'मारवाड़ी विद्यालय' जिसका नाम हाल ही में बदलकर 'नवभारत विद्यालय' कर दिया गया है, अपनी रजत जयंती मनाने जा रहा है। जयंती के साथ-साथ 'हरिजन' में जिस प्रकार की शिक्षा योजना के प्रतिपादन का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ, उस पर चर्चा करने के लिए देश के राष्ट्रीय मनोवृत्ति वाले शिक्षाशास्त्रियों

की एक परिषद् बुलाने का विचार भी इस उत्सव के आयोजकों को सूझा। परिषद् निमंत्रित करना ठीक होगा या नहीं, इस सम्बन्ध में विद्यालय के मंत्री श्री मन्नारायण अग्रवाल ने मुझसे सलाह माँगी और यदि मुझे यह विचार पसंद हो तो उसका अध्यक्ष पद भी ग्रहण करने की मुझसे प्रार्थना की। मुझे दोनों ही विचार पसंद आये। इसलिए इस परिषद् का आयोजन आगामी 22-23 अक्टूबर को वर्धा में हो रहा है।" (गाँधी, 2014)

अतः 22-23 अक्टूबर 1937 को 'वर्धा शिक्षा योजना', 'बुनियादी शिक्षा' या बाद में जिसे 'नई तालीम' कहा जाने लगा, उसका जन्म इसी परिषद् में हुआ। 'उद्योग द्वारा शिक्षा' का गाँधीजी का यह मूल विचार इस परिषद् ने ही सबसे पहले अपनाया।

परिषद् में शिक्षा संबंधी महत्वपूर्ण विचार

परिषद् ने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करके निम्नलिखित विचार प्रकट किए —

1. शिक्षा सबकी हो,
2. शिक्षा निःशुल्क हो,
3. सबकी शिक्षा एक साथ हो,
4. शिक्षा उद्योग-केंद्रित हो,
5. शिक्षा मातृभाषा में हो,
6. शिक्षा में समग्र शिक्षा की दृष्टि हो, तथा
7. शिक्षा सर्वसुलभ हो। (पाण्डेय, 2014 और गाँधी, 2014)

इन्हीं महत्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर 'नई तालीम' की शुरुआत की गई थी।

गाँधीजी का कहना था कि पुरानी तालीम में जितनी अच्छी बातें हैं, वो 'नई तालीम' में रहेंगी, लेकिन उसमें नयापन काफ़ी होगा। 'नई तालीम' यदि

सचमुच नयी होगी तो इसका नतीजा यह होगा कि हमारे अंदर जो मायूसी है, उसकी जगह उम्मीदें होंगी, कंगालियत की जगह रोटी का सामान तैयार होगा। हमारे लड़के-लड़कियाँ पढ़ना-लिखना जानेंगे, साथ ही साथ हुनर भी, क्योंकि उसके ज़रिए ही वे अक्षर ज्ञान भी हासिल करेंगे।

‘नई तालीम’ पद्धति के सिद्धांत

शिक्षा के संबंध में निश्चित धारणा तथा उसके क्रियान्वयन को सतत ध्यान में रखे जाने वाले मुख्य तत्वों को हम साधारणतः उसका सिद्धांत कहते हैं। अतः अब हम ‘नई तालीम’ पद्धति के सिद्धांतों के बारे में पढ़ेंगे।

1. निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा — प्रत्येक मानव को शिक्षा पाने का जन्मसिद्ध अधिकार है। अंग्रेजों ने जब शिक्षा प्रारंभ की तो उन्होंने कुछ उच्च वर्ग को ही शिक्षित करना प्रारंभ किया था, क्योंकि उनका मानना था कि हम योग्य लोगों को शिक्षित कर रहे हैं, ये शिक्षित व्यक्ति ही अन्य लोगों को शिक्षित कर देंगे। इस प्रकार शिक्षा ऊपर से नीचे छन-छनकर जनसाधारण तक पहुँच जाएगी। जब गाँधीजी ने ‘नई तालीम’ पद्धति का विचार व्यक्त किया तो उन्होंने इसके मुख्य सिद्धांत के रूप में अनिवार्य शिक्षा रखी, जिससे शिक्षा सर्वसाधारण तक पहुँच सके। उनका मानना था कि यदि शिक्षा अनिवार्य होगी, तभी हमारे देश की सांप्रदायिक संकीर्णता, जातिगत भेद-भाव, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर आदि भावनाएँ मिटेंगी। किंतु शिक्षा अनिवार्य रूप से तभी सबको मिल सकती है, जब वह निःशुल्क हो, क्योंकि भारत एक गरीब देश है। इसीलिए ‘नई तालीम’ के मुख्य

सिद्धांत के रूप में 8 वर्ष तक के बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का विचार स्वीकार किया गया, क्योंकि गाँधीजी मानते थे कि विद्यादान का संबंध पैसे से नहीं होना चाहिए। नई तालीम विद्यालय में निःशुल्कता के चलते विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती गई, क्योंकि इससे अभिवावकों का बोझ हलका हो गया था।

2. मातृभाषा द्वारा शिक्षा — ‘नई तालीम’ का दूसरा सिद्धांत बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा देना है, क्योंकि शिक्षाविदों द्वारा अनुभव किया गया कि मातृभाषा द्वारा जिस विषय को कम समय में समझाया जा सकता है, उसे अन्य भाषा द्वारा समझने में अधिक समय बर्बाद हो जाता है। गाँधीजी ने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कहा कि — “मुझे गणित, रेखागणित, रसायनशास्त्र एवं ज्योतिष सीखने में चार साल लगे। उतना मैं एक साल में ही सीख लेता, यदि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होता” (राय, 2010)। गाँधीजी की भावना थी कि अपनी भाषा के ज्ञान के बिना कोई सच्चा देशभक्त नहीं बन सकता। मातृभाषा में शिक्षा के बिना हमारे हृदय में मातृभाषा के प्रति स्नेह कम रहता है। भारत के साहित्य और धर्म को विदेशी भाषा के माध्यम से कभी नहीं समझा जा सकता। यदि मातृभाषा में शिक्षा नहीं मिलती है, तो वह तोता रटंत जैसी शिक्षा है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण हमारी मौलिकता नष्ट हो सकती है।

3. उद्योग-केंद्रित शिक्षा — उद्योग ज्ञान की जननी हैं। ज्ञान अनुभूति से निकलता है और अनुभूति कर्म से निकलती है अर्थात् स्पष्ट है कि ज्ञान का स्रोत कर्म और उद्योग हैं। लेकिन अंग्रेजी शिक्षा का दुष्परिणाम सामूहिक रूप से हमारे समाज पर पड़ा। ऐसी स्थिति हो गई कि पढ़े-लिखे लोग

अपने पेशे को भूल गए। फलस्वरूप समाज दो वर्गों में बँटता चला गया, जिसमें से एक मानसिक कार्य एवं दूसरे श्रम में लगें। इस शिक्षा व्यवस्था से अधिकतर विद्यार्थी लिपिक और भाष्यकार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर सकते थे। इस शिक्षा से बच्चों की स्वतंत्र वृत्ति के अवसर कम हो गए थे। बच्चे यह शिक्षा पाकर अपने पुश्तैनी धंधे, जैसे—लुहार, बढ़ई, दर्जी, कृषि, गौ-पालन आदि को नीच काम समझने लगे थे। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा ने हमें श्रम का तिरस्कार करना सिखा दिया। उक्त अंग्रेजी शिक्षा के दोषों को देखते हुए गाँधीजी ने उद्योग शिक्षा पर बल दिया, क्योंकि उद्योग के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करने पर विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास होता है। इससे जीवनोपयोगी विविध ज्ञान भी प्राप्त होता है, साथ ही आजीविका का एक समर्थ साधन भी प्राप्त हो जाता है। हमें काम के द्वारा, काम के लिए एवं काम से ही संपूर्ण जीवन की शिक्षा की जरूरत है। गाँधीजी ने वर्धा शिक्षा सम्मलेन में कहा कि—“आज मैं जो चीज आपके सामने रखने जा रहा हूँ, वह पढ़ाई के साथ-साथ एकाध धंधा सिखा देने की चीज नहीं है। मैं तो अब यह कहना चाहता हूँ कि लड़कों को जो कुछ भी सिखाया जाए, वह सब किसी न किसी उद्योग या दस्तकारी के जरिये ही सिखाया जाए।” (राय, 2010 एवं गाँधी, 2014)

गाँधीजी ने कहा कि लड़के और लड़कियों के सर्वोन्मुखी विकास के लिए जहाँ तक हो सके, शिक्षा किसी-न-किसी ऐसे माध्यम से दी जानी चाहिए जिससे कुछ उपार्जन भी किया जा सके। दूसरे शब्दों में, इस उद्योग आधारित धंधे द्वारा दो उद्देश्य सिद्ध होने चाहिए, एक तो

विद्यार्थी अपने परिश्रम के फल द्वारा अपनी पढ़ाई का खर्च अदा कर सके और दूसरे इसके साथ ही स्कूल में सीखे गए उद्योग आधारित धंधों द्वारा उस लड़के या लड़की के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके। इनका मानना था कि कपास, रेशम, ऊन की चुनाई से लेकर सफ़ाई, कपास की ओटाई, पिंजाई, कताई, रंगाई, माड़ लगाना, ताना लगाना, दुसूती करना, डिजाइन बनाना, कसीदा करना, कागज़ बनाना, ज़िल्दसाजी करना, अलमारी बनाना, खिलौना बनाना, गुड तैयार करना आदि ऐसे धंधे हैं जो आसानी से सीखे जा सकते हैं और साथ ही साथ इन व्यवसायों के लिए बहुत बड़ी पूँजी भी नहीं लगती। (पाण्डेय, 2014)

4. **जीवन की स्वाश्रयता या स्वावलंबी शिक्षा** — निःशुल्क, अनिवार्य, स्वभाषा, उद्योग-केंद्रित और समग्र शिक्षा वह है जो व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को स्वावलंबी या स्वाश्रयी बनाए। स्वाश्रयी के भीतर दो शब्द हैं — एक स्व और दूसरा आश्रयी अर्थात् जो अपने ऊपर आश्रित हो। स्वाश्रयता से सत्य और अहिंसा का भी पालन होता है। इसीलिए गाँधीजी चाहते थे की शिक्षा आत्मनिर्भर हो। वे चाहते थे कि शिक्षण द्वारा ही बच्चे ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ भविष्य की आजीविका में निपुणता भी प्राप्त कर सकें। इसलिए उनकी राय थी कि विद्यार्थियों को बढ़ईगिरी, पैमाइश, नक्शे बनाना, मोटर चलाना, फोटोग्राफी करना, मशीनों का काम करना, रंगाई, कृषि, वाद्य यंत्र बनाना, सिलाई आदि करना चाहिए जिससे उनके भोजन एवं वस्त्र के खर्च निकल जाएँ। (लाल, और तोमर, 2008 तथा राय, 2010)

5. **शिक्षा की प्रक्रिया में बालक को प्रमुखता**—गाँधीजी मनुष्य के मानस और आत्मा में सन्निहित सर्वोत्तम या समुचित और सर्वांगीण विकास को शिक्षा का लक्ष्य मानते थे। चूँकि बालक का अपना व्यक्तित्व होता है और उसके व्यक्तित्व के विकास में कोई संस्था बाधक न हो, इसीलिए ‘नई तालीम’ के सिद्धांत में बाल-केंद्रित शिक्षा जोड़ा गया। अतः बुनियादी शालाओं में जितनी भी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ सम्पादित होती हैं, वे सब बालकों की शक्ति, प्रवृत्ति एवं अभिरुचि के अनुसार आयोजित होती हैं। बालक काम करना जानना, प्यार करना एवं प्यार पाना चाहता है, क्योंकि यह बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यदि बच्चों के अनुरूप काम होते हैं, तो इन पर तनिक भी बोझ नहीं पड़ता, साथ ही स्वाभाविक तौर पर मानसिक विकास भी होता है। गाँधीजी की उक्ति है — “मेरे लिए तो सच्ची नई तालीम वही है, जहाँ बच्चे खेलते-खेलते सीखें।” (राय, 2010)

6. **‘नई तालीम’ पद्धति में अध्यापक की भूमिका**—‘नई तालीम’ पद्धति को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए प्रतिभाशाली, चरित्रवान और आस्थावान शिक्षक का होना आवश्यक है। नई तालीम को असली रूप देने के लिए आचार्य विनोबा भावे ने आचार्य कुल के गठन पर बल दिया। आचार्य कुल, अर्थात् ऐसे शिक्षकों, आचार्यों का परिवार जो आचार और विचार, दोनों दृष्टि से समाज में अनुकरणीय हो। वे शिक्षकों में तीन गुणों का होना आवश्यक मानते थे, जो थे विद्यार्थियों से प्रेम वात्सल्य और अनुराग, निरंतर अध्ययनशीलता, तटस्थता और राजनीति से मुक्ति। इस प्रकार ‘नई तालीम’ पद्धति में शिक्षकों पर

सर्वोदय समाज के निर्माण का सबसे अधिक दायित्व है।

7. **नूतन मानव के निर्माण के लिए ‘नई तालीम’ पद्धति**—गाँधीजी के ‘नई तालीम’ के सिद्धांत का उद्देश्य नूतन मानव का निर्माण करना भी था, क्योंकि शिक्षा का आभूषण संस्कार भी है। मनुष्य का पेट भी भरे, पहनने के लिए कपड़े हों, रहने के लिए आवास हो, लेकिन जब तक उसका जीवन सुसंस्कृत नहीं होता, तब तक वह शिक्षित नहीं समझा जाता। संस्कार का शिक्षण शोषण रोकता है, साथ ही पोषण का भी भाव भरता है, प्राणिमात्र में सहानुभूति और प्रेम भी उपस्थित करता है, धनी-गरीब का भेद मिटाता है, ऊँच-नीच में समता लाता है, साथ ही सर्वोदयवाद भी उपस्थित करता है अर्थात् सही ज्ञान की प्राप्ति हेतु ही मानव के चरित्र-निर्माण को महत्वपूर्ण स्थान ‘नई तालीम’ में दिया गया।

‘नई तालीम’ शिक्षा पद्धति के आधार

‘नई तालीम’ की पद्धति निर्धारित करने के उद्देश्य से ही गाँधीजी ने 1937 में *हरिजन* पत्रिका में कुछ विचारों को छापा, जिसे ‘नई तालीम’ पद्धति का आधार कह सकते हैं। ये विचार थे —

- यदि हमें मानव समाज को लड़ाकू प्रवृत्ति से उबारना है तो शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो तमाम देशों में और सभी जातियों में काम दे सकती हो।
- इनकी मान्यता है कि शिक्षा पद्धति ऐसी हो जो भले-बुरे का ज्ञान कराते हुए सामाजिक जीवन में भाग लेना सिखाए।
- ‘नई तालीम’ की शिक्षा पद्धति उद्योग पर ही निर्भर करेगी। बच्चे उद्योग भी चलाएँगे एवं बौद्धिक ज्ञान भी प्राप्त करेंगे। अतः इस शिक्षा का मध्य बिंदु उत्पादक पेशा ही होगा। इसके साथ ही

- इतिहास, भूगोल, गणित, भौतिकी, समाज आदि की भी शिक्षा उद्योग के साथ दी जाए।
- गाँधीजी शिक्षा की ऐसी पद्धति चाहते थे जिसमें उद्योग शिक्षा का केवल वाहक नहीं होगा, बल्कि इसके द्वारा हर तरह के शरीर श्रम के प्रति, चाहे वह अच्छा काम क्यों न हो, आदर का भाव उत्पन्न हो सके। विद्यार्थियों में कर्तव्यनिष्ठा भाव जाग्रत हो तथा अपनी रोजी ईमानदारी के साथ शारीरिक श्रम करके ही प्राप्त कर सकें।
- इस पद्धति में शिक्षा का ऐसा लक्ष्य होगा जो विद्यार्थी को उद्योग सिखाने के साथ-साथ उसे तमाम शारीरिक, बौद्धिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने में सहायक हो।
- 'नई तालीम' पद्धति का आधार ऐसा होना चाहिए जिसमें विज्ञान की पूरी शिक्षा के साथ-साथ दस्तकारी की भी शिक्षा हो।
- 'नई तालीम' पद्धति ऐसी हो जिसमें मातृभाषा का अच्छा ज्ञान, मातृभाषा के साहित्य का साधारण परिचय, राष्ट्रभाषा का ज्ञान, आलेखन, संगीत, काव्य, खेल, व्यायाम आदि कराया जाए।
- खादी उद्योग द्वारा ही 'नई तालीम' देने की पद्धति बनाई जाए।
- उनकी शिक्षा शिक्षाविद् के पर्यवेक्षण में होनी चाहिए। प्राथमिक स्तर पर सभी शिक्षक चरित्रवान होने चाहिए।
- प्रत्येक बालक-बालिका की विशेष अभिक्षमताओं की पहचान की जानी चाहिए।
- सामान्य ज्ञान की शिक्षा इस तरह दी जानी चाहिए कि बालक पहले चीजों को समझना प्रारंभ करे, पढ़ना या लिखना बाद में होना चाहिए।
- विद्यार्थियों को सर्वप्रथम सरल ज्यामितीय चित्र बनाना सिखाना चाहिए, जब वे इन्हें सरलतापूर्वक सीख लें तो उन्हें वर्णमाला सिखानी चाहिए, जब छात्र यह भी सीख लें तब उन्हें अच्छी लिखावट सिखानी चाहिए।
- लिखने से पहले पढ़ना आना चाहिए। सर्वप्रथम अक्षर को चित्रों के माध्यम से सिखाना चाहिए।
- जब छात्र 8 वर्ष से अधिक उम्र का हो जाए तो उसे उसकी क्षमता के अनुसार ज्ञान प्रदान करना चाहिए।
- छात्र को कुछ भी जबरदस्ती नहीं सिखाना चाहिए, जिसमें छात्र की रुचि हो, वही सिखाना चाहिए।
- शिक्षा खेल के माध्यम से दी जानी चाहिए, क्योंकि खेल शिक्षा का एक महत्वपूर्ण भाग है।
- सभी तरह की शिक्षा मातृभाषा में दी जानी चाहिए।
- बालक को राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी सिखानी चाहिए, इससे पहले कि वह अक्षर ज्ञान प्राप्त करे।
- धार्मिक शिक्षा अपरिहार्य है और इसे छात्र को शिक्षकों के आचार-व्यवहार, उनको सुनकर, उसके बारे में बातचीत करके सिखाना चाहिए।
- आठ से सोलह वर्ष विद्यार्थियों की शिक्षा का द्वितीय स्तर है। जहाँ तक हो सके, यह होना चाहिए कि द्वितीय स्तर में लड़के-लड़कियों को सहशिक्षा दी जाए।
- इस स्तर पर लड़कों को उनके माता-पिता के द्वारा उनके पसंद के व्यवसाय में प्रवीण किया जाए, जो उन्होंने बचपन में हाथ से किया हो।
- इस स्तर पर विद्यार्थियों को विश्व इतिहास, भूगोल, खगोलशास्त्र, बीजगणित और ज्यामितीय की सामान्य जानकारी अर्जित करनी चाहिए।
- सभी विद्यार्थियों को सिलाई और कुकिंग सिखानी चाहिए।
- द्वितीय स्तर पर छात्र आत्मनिर्भर हो जाएँ। वे अधिकतम समय पढ़ाई करें। कुछ उद्योगों के कार्य भी करें, जिससे होने वाली आय से उनके विद्यालय खर्च का वहन हो सके।
- सोलह से पच्चीस वर्ष विद्यार्थियों का तीसरा स्तर है। इस स्तर पर प्रत्येक युवा को उसकी इच्छा व परिस्थिति के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए।

- उत्पादन कार्य शुरू से ही प्रारंभ कर देना चाहिए, लेकिन प्रथम स्तर पर उसके विद्यालय व्यय के बराबर उत्पादन कार्य नहीं कराना चाहिए।
- शिक्षकों को बहुत अधिक वेतन नहीं देना चाहिए। वे जीवन को जी सकें, उतना ही वेतन देना चाहिए। उन्हें सेवा की भावना से अध्यापन कार्य करना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर किसी भी व्यक्ति को शिक्षक के रूप में नियुक्त नहीं करना चाहिए।
- अंग्रेजी को केवल एक अलग भाषा के रूप में पढ़ाना चाहिए। इसको केवल राष्ट्रीय व्यवसाय या अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में पढ़ाना चाहिए।
- महिलाओं को कोई अलग शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। जहाँ पर जरूरत हो, वहाँ पर उनको विशेष सुविधाएँ दी जानी चाहिए, नहीं तो अन्य जगह उन्हें पुरुषों के समान ही सुविधाएँ दी जानी चाहिए।
- बड़े और महंगे मकान शैक्षिक संस्थान के लिए जरूरी नहीं हैं।

गाँधीजी के उक्त विचार को ध्यान में रखते हुए ही 'नई तालीम' पद्धति का निर्माण किया गया, जिसे कुछ शिक्षाविदों ने 'समवाय पद्धति' भी कहा। वर्धा सम्मेलन में गाँधीजी ने यह प्रस्ताव रखा था कि शिक्षा का केंद्र बिंदु उत्पादक उद्योग होने चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार हमारे सब विद्यार्थियों को खेती और बुनने का काम करना चाहिए और बच्चों को जो शिक्षा-दीक्षा देनी है, उसका संबंध जहाँ तक हो सके उसी केंद्रीय उद्योग से होना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि गाँधीजी यह चाहते थे कि बालक उद्योग के माध्यम से न केवल ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी बातें सीखें, बल्कि औद्योगिक क्रियाओं के संपादन के सिलसिले में ही उनके चरित्र और व्यक्तित्व का

सम्यक, संतुलित और सर्वांगीण विकास भी हो जाए। गाँधीजी की मंशा थी कि शिक्षा पद्धति ऐसी हो जिसके द्वारा बालक के हाथों का, मस्तिष्क का और उसकी आत्मा का विकास हो। (दुबे, 2013 और ओड़, 2014)

गाँधीजी उद्योग का व्यापक अर्थ लगाते थे, क्योंकि उद्योग के लिए कच्चा माल प्रकृति से प्राप्त होता है और निर्मित वस्तुओं का उपभोग समाज करता है। अतः इनकी उद्योग-केंद्रित शिक्षा वस्तुतः प्रकृति, समाज एवं उद्योग पर केंद्रित है अर्थात् उन तीनों में परस्पर समवाय स्थापित है, चूँकि कर्म और ज्ञान का अभिन्न संबंध ही समवाय कहलाता है, अतः विभिन्न क्रियाओं द्वारा ज्ञानोपार्जन करना समवाय शिक्षण का उद्देश्य है। (राय, 2010 और पाण्डेय, 2014)

‘नई तालीम’ पद्धति का वर्तमान स्वरूप

‘नई तालीम’ पद्धति की जब शुरुआत की गई तो यह मानकर की गई कि यह केवल यांत्रिक शिक्षा या उद्योग की शिक्षा मात्र नहीं है, बल्कि यह तो सर्वांगीण बौद्धिक विकास तथा सांस्कृतिक समन्वय की शिक्षा है। बौद्धिक विकास तथा संस्कृति के उच्च आदर्श तक पहुँचना इसका मुख्य उद्देश्य है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु शब्द तथा ग्रंथ उपयोग में नहीं लाए जाएँगे, बल्कि जीवन के प्रत्यक्ष प्रयोगों और प्रकृति के पूर्ण अध्ययन द्वारा समाज की आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त कर प्राकृतिक साधनों का मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समुचित प्रयोग किया जाएगा। लेकिन समय के साथ ‘नई तालीम’ के पठन-पाठन का स्वरूप और शिक्षण पद्धति कुछ हद तक वैसी ही चल रही है, यद्यपि कुछ परिवर्तन भी हुए हैं। ‘नई तालीम’ पद्धति का वर्तमान स्वरूप अग्रलिखित है —

‘नई तालीम’ पद्धति विद्यालय की समय सारणी (कक्षा 6-8 तक)

दि./ समय	10:05 10:25	10:30 11:10	11:10 11:45	11:45 11:50	11:50 12:25	12:25 01:00	12:25 01:00	01:00 01:35	01:35 02:05	02:05 02:40	02:40 03:15	03:15 03:20	03:20 03:55	03:55 04:30	04:30 05:00
सोमवार		अंग्रेजी	भूगोल		विज्ञान	गणित	मराठी						बागवानी कार्य		
मंगलवार		अंग्रेजी	भूगोल		विज्ञान	गणित	मराठी						हिंदी		
बुधवार	बाल सभा	अंग्रेजी	भूगोल	अल्प अवकाश	विज्ञान	गणित	मराठी	मध्याह्न भोजन	चित्रकला नृत्य			अल्प अवकाश	बागवानी कार्य		सफाई
गुरुवार		अंग्रेजी	भूगोल		विज्ञान	गणित	मराठी	अवकाश	शारीरिक शिक्षा	हिंदी			कॅप्टूर		
शुक्रवार		अंग्रेजी	भूगोल		विज्ञान	गणित	मराठी		इतिहास	इतिहास			वाचनालय	हिंदी	
दिन / समय	08:00-08:40	08:00-08:40	08:40-09:50	09:50-10:30	10:30-11:00	11:00-11:30	11:30-12:00	12:00-02:00	12:00-02:00	12:00-02:00	12:00-02:00	12:00-02:00	12:00-02:00	12:00-02:00	12:00-02:00
शनिवार	योग	बाल सभा	अंग्रेजी	योग	बाल सभा	अंग्रेजी	मध्यह्न भोजन	मराठी	गणित	सूट कर्ताई	गणित	सूट कर्ताई	गणित	सूट कर्ताई	सूट कर्ताई

- विद्यालय सुबह 10:00 बजे प्रारंभ होता है। सबसे पहले बाल सभा होती है, जिसे हम लोग सरकारी विद्यालयों में प्रार्थना सभा कहते हैं। यह स्वयं विद्यार्थियों द्वारा की जाती है। इसके उपरांत सभी विद्यार्थी अपनी-अपनी कक्षा में जाने के लिए निकलते हैं। कक्षा में प्रवेश करने से पहले कक्षा के बाहर अपने जूते-चप्पल पंक्ति में रखते हैं, तत्पश्चात् कक्षा में प्रवेश करते हैं। इसके बाद वे अपनी मेज़ या बिछावन, जोकि एक तरफ़ रखे होते हैं, को उठाते हैं और उस पर बैठते हैं। शाम को जाते समय फिर से विद्यार्थी अपनी-अपनी मेज़ या बिछावन को उठाकर यथास्थान पर रख देते हैं।
- सामान्यतः कक्षाएँ दिन में सुबह 10:00 से शाम 5:00 बजे तक (सोमवार से शुक्रवार) चलती हैं। किंतु शनिवार को 8:00 से 2:00 बजे तक कक्षा चलती है, इसमें भी छोटी कक्षाएँ (कक्षा 1 से 5) 8:30 से 12:30 बजे तक ही चलती हैं। 'नई तालीम' विद्यालय में वर्ष में 288 दिन कार्य किया जाता है।
- **वर्तमान 'नई तालीम' पद्धति का पाठ्यक्रम** — वर्तमान 'नई तालीम' पद्धति क्रिया-केंद्रित है। यह शिक्षा प्रणाली मानव के पूर्ण विकास अर्थात् उसके शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के सर्वोत्तम विकास पर आधारित है। इसमें बुनियादी शिल्प, जैसे — कृषि कार्य, सूत कातना, बुनाई करना, लकड़ी का काम, गत्ते का काम, धातु का काम, बागवानी, चमड़े का काम आदि समाज की स्थानीय जीवन वृत्तियों के अनुकूल होता है। अंग्रेजी, हिंदी, विज्ञान, भूगोल, इतिहास, मातृभाषा, चित्रकला, नृत्य आदि विषयों को शामिल करके पठन-पाठन कार्य किया जाता है। गाँधीजी इस बात पर ज़ोर दिया करते थे कि शिक्षा शिल्प-केंद्रित होनी चाहिए, अतः उसी के अनुरूप 'नई तालीम' शिल्प-केंद्रित है। गाँधीजी के कहे अनुसार मातृभाषा में ही स्कूल में शिक्षा दी जाती है, क्योंकि यह विचारों की अभिव्यक्ति तथा उनके प्रसरण का प्रभावशाली साधन है। गणित को व्यावहारिक जीवन की स्थितियों के साथ संबंधित किया गया है। इसके अंतर्गत अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित को शिल्प शिक्षा के सहयोग से पढ़ाया जाता है। विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति वास्तविक रूप से रुचि उत्पन्न करने के लिए संगीत तथा चित्रकला के विषयों को भी सम्मिलित किया गया है।
- **'नई तालीम' पद्धति के पाठ्यक्रम की विशेषताएँ** — पाँचवी कक्षा तक के बालक और बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम है। पाँचवी कक्षा के बाद बालक एवं बालिकाओं के लिए पृथक पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। छठी से आठवीं कक्षा की बालिकाएँ आधारभूत शिल्प के स्थान पर गृह विज्ञान विषय का अध्ययन कर सकती हैं। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है, पर राष्ट्रभाषा हिंदी का अध्ययन समस्त बालक एवं बालिकाओं के लिए अनिवार्य है।
- **शिक्षण विधि** — 'नई तालीम' पद्धति में चाहे जिस विधि का प्रयोग किया जाए, पर प्रशिक्षण

का कार्य क्रियाओं और अनुभवों पर अनिवार्य रूप से आधारित होता है। शिक्षण विधि इतनी अधिक व्यावहारिक होती है कि बालक विभिन्न विषयों का ज्ञान एक ही समय में प्राप्त करता है। विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों की शिक्षा स्वतंत्र रूप में न देकर आधारभूत शिल्प के माध्यम से प्रदान की जाती है। यदि किसी विषय की शिक्षा आधारभूत शिल्प के माध्यम से नहीं दी जा सकती है तो उसकी शिक्षा किसी अन्य विधि से दी जाती है। पाठ्यक्रम के समस्त विषय परस्पर संबंधित ज्ञान क्षेत्रों के रूप में बालकों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते हैं। प्राकृतिक परिस्थिति, सामाजिक परिस्थिति और हस्तकला के माध्यम से अनेक विषयों में परस्पर संबंध स्थापित किया जाता है। बालक को अपनी रुचि के अनुसार हस्तशिल्प का चुनाव करने की स्वतंत्रता दी जाती है। 'नई तालीम' विद्यालय में शिक्षकों द्वारा चार्ट, खिलौने, इंटरनेट, ऊर्जा से जुड़े मॉडल, जैव विविधता से जुड़े हुए कुछ मॉडलों के माध्यम से विद्यार्थियों को सिखाया जाता है। 'नई तालीम' विद्यालय में होने वाली गतिविधि आधारित शिक्षण विधियों को पूर्व ज्ञान से जोड़कर सिखाया जाता है।

'नई तालीम' विद्यालय के विद्यार्थी स्वयं से पढ़कर सीखना अधिक पसंद करते हैं। कहानी को सुनने से ज्यादा पढ़ने को वरीयता देकर सीखते हैं। विभिन्न अवधारणाओं को चार्ट, आरेख, मानचित्र के माध्यम से समझने में उनको सहायता मिलती है। स्वयं द्वारा हाथों से की जाने

वाली क्रियाओं में वे आनंद का अनुभव करते हैं। इसमें वे अपने सहपाठियों के साथ समूह में कार्य करते हुए एक-दूसरे के साथ संवाद करते हैं, जिससे उनके अंदर आत्मविश्वास उत्पन्न होता है।

- **शिक्षकों की शिक्षण शैली** — 'नई तालीम' पद्धति में शिक्षक विषय ज्ञान एवं व्यावहारिक ज्ञान से विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करते हैं। शिक्षकों द्वारा पिछले दिनों पढ़ाए गए पाठ का पुनरवलोकन किया जाता है। विद्यालय में पढ़ाने वाले शिक्षकों द्वारा बागवानी, सिलाई, नृत्य, कढ़ाई, बुनाई, मिट्टी की कारीगरी, क्राफ्ट, कागज से बने हुए खिलौने, रसोई कार्य इत्यादि के माध्यम से विद्यार्थियों को कौशल की शिक्षा दी जाती है। नैतिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यालय में मूल्य आधारित शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है।
- **शिक्षक-विद्यार्थी अंतर्क्रिया** — 'नई तालीम' के अंतर्गत शिक्षकों और विद्यार्थियों के मध्य विषय-वस्तु को पढ़ाए जाने के दौरान प्रश्न-उत्तर के माध्यम से सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पूर्ण होती है। कक्षा शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों के व्यक्तिगत अनुभव तथा विचारों को बढ़ावा दिया जाता है। शिक्षकों द्वारा विद्यालय में वाचन, प्रश्न-उत्तर, मॉडल, समूह कार्य, चर्चा-परिचर्चा तथा दृश्य-श्रव्य सामग्री के माध्यम से विद्यार्थियों को जीवन से जोड़कर शिक्षण को प्रभावशाली बनाते हुए अंतर्क्रिया का कार्य संपन्न किया जाता है।

- **कंप्यूटर प्रशिक्षण** — कंप्यूटर का प्रशिक्षण कक्षा 4 – 10 तक के विद्यार्थियों को दिया जाता है। यह प्रशिक्षण विभिन्न कक्षा के विद्यार्थियों को अलग-अलग समय पर दिया जाता है। विद्यार्थियों को इंटरनेट एवं अन्य नई सूचनाओं से संबंधित जानकारी दी जाती है।
- **विज्ञान प्रयोगशाला** — विद्यार्थियों के लिए एक उच्च कोटि की विज्ञान प्रयोगशाला भी है, जिसमें समय-समय पर विद्यार्थियों द्वारा विज्ञान से संबंधित प्रयोग कार्य किए जाते हैं।
- सत्र 2016–17 से पहली बार कक्षा 10 का अध्ययन कार्य प्रारंभ किया गया है। इसके पहले कक्षा 9 तक ही शिक्षण का कार्य किया जाता था।
- शनिवार को सुबह की कक्षा में विद्यार्थियों को यह बताया जाता है कि अगले सप्ताह में कौन-कौन सी योजनाएँ क्रियान्वित की जानी हैं, जैसे — शिल्प शिक्षा के अंतर्गत किन वस्तुओं एवं सामग्री का निर्माण करना है।
- शिल्प शिक्षा से संबंधित सारे कार्य, जैसे — कटाई, बुनाई, सिलाई, कढ़ाई, खेती इत्यादि काम दोपहर 2:00 बजे के बाद किए जाते हैं। सिलाई के अंतर्गत बैग, पर्स इत्यादि बनाए जाते हैं, जबकि कढ़ाई के अंतर्गत पंखी, पावदान, पोछा, चटाई इत्यादि बनाई जाती हैं। इन सभी बनाए गए सामान की बिक्री की जाती है।
- वर्ष में कई बार बड़े पैमाने पर निर्मित सामानों की बिक्री की जाती है। इसके प्रदर्शन के लिए

विभिन्न जगहों एवं विद्यालयों से लोगों को बुलाया भी जाता है (जैसे — 8 अक्टूबर, 2016 को विद्यार्थियों द्वारा निर्मित सामानों की बिक्री का कार्य किया गया)।

- अन्य शिक्षण संस्थानों की तरह वर्ष में दो बार परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं तथा विद्यार्थियों को अंकपत्र प्रदान किया जाता है।

निष्कर्ष

आधुनिक शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी के केवल बौद्धिक विकास पर ही बल दिया जाता है। उसके शारीरिक और आध्यात्मिक विकास के प्रति तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता, जिससे बालक का केवल एकांगी विकास होता है। लेकिन 'नई तालीम' पद्धति में बालक के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के प्रति पूर्ण ध्यान दिया जाता है। यदि हम आधुनिक शिक्षा पद्धति पर विचार करें तो वर्तमान समय में बहुत अधिक संख्या में नवयुवक मेडिकल, इंजीनियरिंग, कला, विज्ञान एवं अन्य विषयों की शिक्षा लेकर भी बेरोजगार हैं, जिसके कारण सामान्य शिक्षा व्यवस्था से आज लोगों का मोहभंग हो रहा है। अतः हमें गाँधीजी की 'नई तालीम' पद्धति पर एक बार पुनः ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। वर्तमान आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यदि गाँधीजी की 'नई तालीम' को सही तरीके से लागू किया जाए तो विद्यार्थी का शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास अर्थात् उसका सर्वांगीण विकास आसानी से संभव है। यह शिक्षा शिल्प पर आधारित होने के कारण आम जनमानस के लिए रोजगार प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

संदर्भ

- ओड़, एल. के. 2014. शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि. हिंदी ग्रंथ अकादमी, राजस्थान.
- कुमारी, किरण. 2007. गाँधी — विचार और दर्शन (प्रथम संस्करण). राजेश प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- गर्ग, पूनम. 1995. गाँधी की विचारधारा पर पश्चिम का प्रभाव. हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.
- गाँधी, एम.के. 2007. सत्य के प्रयोग (पुनर्मुद्रण). नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद.
- . 2008. मेरे सपनों का भारत. राजपाल एंड संस, नयी दिल्ली.
- . 2011. आश्रम आब्जर्वेशंस इन ऐक्शन. नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद.
- . 2014. बुनियादी शिक्षा. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.
- जोशी, एम. सी. 2015. गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा अंबेडकर. अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद.
- दुबे, सत्यनारायण. 2013. भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाविद्. अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद.
- पाण्डेय, रामशकल. 2010. उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक. अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
- . 2013–14. शिक्षादर्शन और शिक्षाशास्त्री (द्वितीय संस्करण). अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
- पाण्डेय, के.पी. 2011. शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
- प्रभाकर, विष्णु. 2003. गाँधी — समय, समाज और संस्कृति (प्रथम संस्करण). वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- प्रसाद, वीणा. 2009. महात्मा गाँधी के आर्थिक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा (प्रथम संस्करण). जानकी प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- राय, वीरचन्द्र. 2010. गाँधीवादी बुनियादी शिक्षा — बिहार के आईने में (प्रथम संस्करण). मेधा प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- लाल, रमन बिहारी और तोमर, गजेन्द्र सिंह. 2008. विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक. आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ.
- लाल, रमन बिहारी. 2010. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत. रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ.
- शर्मा, आर.ए. 2010. शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार. आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ.
- शर्मा, श्रीराम. 2003. गाँधी मानव रूप में (प्रथम संस्करण). नमन प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- शर्मा, वीरेन्द्र और शर्मा, ऋचा. 2008. गाँधी विचार दर्शन. यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.
- सिंह, अश्वनी कुमार. 2016. शिक्षा के परिप्रेक्ष्य. अंशिका पब्लिकेशन, इलाहाबाद.
- सिंह, एम. कुमार और चौधरी, एस. कुमार. 2007. भारतीय राजनीतिक चिन्तक महात्मा गाँधी (प्रथम संस्करण). डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.
- सिंह, श्रीभगवान. 2012. गाँधी एक खोज (प्रथम संस्करण). भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली.
- सिन्हा, मनोज. 2010. गाँधी अध्ययन. ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली.
- सिंह, सतीश कुमार. 2016. महात्मा गाँधी जीवन एवं दर्शन. भार्गव ऑफ़सेट, इलाहाबाद.
- त्रिपाठी, मधुसुदन और त्रिपाठी, ए. कुमार. 2013. महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन (प्रथम संस्करण). ओमेगा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय एकता और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका

चित्रा सिंह*

भारत में अंग्रेजी के प्रभुत्व के समर्थन में यह तर्क दिया जाता है कि यह एक वैश्विक भाषा है, तकनीक और विज्ञान की भाषा है, अतः यदि हमें इन क्षेत्रों में तरक्की करनी है और विश्व में अपना प्रभाव बढ़ाना है तो हमें इस पर अधिकार बनाए रखना चाहिए। इस बारे में दूसरा तर्क यह भी दिया जाता है कि अमेरिका व ब्रिटेन, जो दुनिया में प्रभाव रखते हैं व विज्ञान के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं, की भाषा अंग्रेजी है, अतः अंग्रेजी पर हमारा अधिकार हमें स्वाभाविक रूप से समृद्ध करेगा। तीसरा तर्क यह दिया जाता है कि हमारी भारतीय भाषाओं में विभिन्न विषयों, विशेष रूप से विज्ञान से संबंधित विषयों की शब्दावली का अभाव है। कहा जाता है कि यदि हमें इन विषयों में हो रहे विकास और गति से सामंजस्य बैठाना है तो हमें अंग्रेजी जाननी ही चाहिए और यह भी कहा जाता है कि सभी विषयों से संबंधित हिंदी शब्दावली, जो संस्कृत से ली जाती है, समझने व बोलने में इतनी कठिन होती है कि इसे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। इसके ठीक विपरीत पुरातनवादी खेमा अतीत की उपलब्धियों को पश्चिम के ज्ञान और अध्ययन के क्षेत्रों में वर्तमान उपलब्धियों से श्रेष्ठ बताकर अंग्रेजी को बाहर निकालने पर आमादा रहता है। वहीं, प्रगतिशील खेमा इसे पोंगापंथी कहकर यह भुला देता है कि इतने लंबे सांस्कृतिक काल में कोई भी संस्कृति ज्ञान और अध्ययन के क्षेत्रों में कुछ तो उपलब्धि रखती ही होगी और इनसे संबंधित शब्दावली भी उसकी भाषाओं में मौजूद होगी ही, क्योंकि शब्द केवल भाषा की अभिव्यक्ति भर के लिए नहीं होते; वे व्यवहार का माध्यम भी होते हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी वे उतने ही उपयोगी हो सकते हैं एवं ज्ञान और अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में हमें आगे बढ़ा सकते हैं। मातृभाषाओं में विभिन्न विषयों का अध्ययन इससे आसान बनाया जा सकता है और ज्ञान एवं अध्ययन के सभी क्षेत्रों में देश के विकास को गति दी जा सकती है। लेकिन संपर्क भाषा की आवश्यकता इन दो मानसिकताओं और प्रवृत्तियों के बीच उलझकर रह जाती है और हम देखते हैं कि हमारी राष्ट्रीय एकता पर ही प्रश्न चिह्न लग जाता है। प्रस्तुत लेख में इस मनःस्थिति और प्रवृत्ति पर प्रकाश डालने के साथ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषाओं के मध्य हिंदी संपर्क भाषा के रूप में क्या योगदान दे सकती है? उसकी इस संभावित भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास के हिंदू वर्चस्व काल में संस्कृत, की भी। लेकिन आमजन की भाषा प्रायः अलग ही मुस्लिम काल में फ़ारसी व ब्रिटिश काल में अंग्रेजी रही और उसे प्रशासन का संरक्षण भी कम ही मिला

एलीट या अभिजात्य वर्ग की भाषा रही और प्रशासन

यही नहीं, बौद्धिक कहलाने वाला वर्ग भी प्रायः इस प्रवृत्ति से अछूता नहीं रहा। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है और आज भी कायम है, लेकिन प्रारम्भ में ऐसा नहीं था। हमारे देश के प्रामाणिक और अभिलिखित इतिहास का प्रारम्भ सम्राट अशोक के काल से होता है और उनकी भाषा नीति इसका अपवाद है। अशोक के अभिलेखों की भाषा आम बोलचाल की प्राकृत भाषा थी और लिपि ब्राह्मी थी। ये अभिलेख प्राचीन भारत के सुदूर पश्चिमी सीमांत के शार-ए-कुना, जो वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान के कंधार में प्राचीन सिकन्दरिया के समीप स्थित था, से लेकर दूर दक्षिण के एरगुन्डी तक फैले हुए थे और ये हमें केवल अशोक के राज्य की सीमाओं से ही अवगत नहीं कराते, वरन् उसकी भाषा नीति पर भी प्रकाश डालते हैं। इतने विशाल क्षेत्र में एक ही भाषा नहीं थी, इसका प्रमाण स्वयं ये अभिलेख भी देते हैं और पश्चिमी सीमांत के उपरोक्त लेख में जहाँ यूनानी और एरमाईक लिपि प्रयुक्त है, वहीं अफ़ग़ानिस्तान के ही पुल-ए-दारुन्त के अभिलेख में लिपि एरमाईक है, लेकिन इसमें गान्धारी प्राकृत के कुछ शब्द हैं। इसी तरह भाषा भी, जो मूलतः मागधी प्राकृत थी, हर क्षेत्र विशेष का स्थानीय प्रभाव लिए हुए है। इसके अलावा अपने एक और अभिलेख में स्वयं अशोक ये बताते हैं कि ये अभिलेख उन्होंने क्यों लगवाए थे और वह इनमें अपने उन अधिकारियों को निर्देश भी देते हैं, जिनके लिए ये प्राथमिक रूप से लगवाए गए थे। यह अधिकारी वर्ग ही इन्हें पढ़ सकता था और अशोक इनमें उन्हें जनता के बीच प्रचारित करने के निर्देश भी देते हैं। इससे यह भी पता चलता है

कि वे जनता के लिए हो भी नहीं सकते थे, क्योंकि इसकी लिपि सर्वथा नयी थी और आमजन तो इससे पूरी तरह अनजान था। अशोक ने दक्षिण भारत में इन अभिलेखों को उत्कीर्ण करने के लिए लिपिकार को भी उत्तर से ही भेजा था। इसका पता हमें एक ही लिपिकार का नाम उत्तर और दक्षिण भारत के दो अभिलेखों में पाए जाने से लगता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्राकृत को अशोक एक संपर्क भाषा के रूप में काम में लेते थे। ये भारत के इतिहास में 'एक भाषा-एक लिपि' की नीति का आरम्भ था और अशोक जैसे दूरदर्शी शासक ने एक विशाल क्षेत्र के प्रशासन के लिए इसकी आवश्यकता का तभी अनुभव कर लिया था। लेकिन निरन्तर बदलती राजनैतिक परिस्थिति के कारण यह बाद में कभी संभव ही नहीं हो पाया, आज तक भी नहीं। इतना जरूर हुआ कि इस लिपि ने भारत की सभी भाषाओं की लिपियों को जन्म दिया। बाद में मुस्लिम काल में प्रशासन की भाषा फ़ारसी हो गई और इसके अवशेष हम आज तक न्यायालयों की भाषा में दीवानी और फ़ौजदारी जैसे पारिभाषिक शब्दों के रूप में पाते हैं और रजिस्ट्री इत्यादि की शब्दावली एवं भाषा तो आज भी विशेष रूप से या तो अंग्रेज़ी है या फ़ारसी प्रेरित उर्दू है। उच्च न्यायालयों की तो सारी पारिभाषिक शब्दावली ही अंग्रेज़ी में है और इसमें भी ठेठ लैटिन से लिए गए 'केवियट' और 'हेबियस कॉरपस' जैसे पारिभाषिक शब्द मौजूद हैं। अंग्रेज़ों के शासन के साथ ही अंग्रेज़ी के प्रभुत्व का भी आरम्भ हुआ था और यह आज तक बना हुआ है। आज प्रशासन की भाषा हिंदी बन गई है, जिसे राजभाषा

का दर्जा दिया गया है। यह धीरे-धीरे ही सही, अपना स्थान बनाती जा रही है। उपरोक्त सभी तथ्यों की पुष्टि से ज्ञात होता है कि शासन की भाषा ही अन्ततः जनता की भाषा बन जाती है।

परन्तु असली परेशानी यहीं से प्रारंभ होती है। भाषाओं को लेकर हमारे यहाँ चलती सतत बहसों में इसे दूसरे भाषा-भाषियों द्वारा हिंदी का वर्चस्व स्थापित करने के प्रयास के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है। वहीं, स्वयं हिंदी भाषियों का प्रगतिशील कहलाने वाला समूह इसके दूसरे पक्ष पर घोर आपत्ति करता है। वह पक्ष है संस्कृतनिष्ठ हिंदी। इस समूह के अनुसार इससे हिंदी समझने में कठिन हो जाती है, अतीत के प्रति मोह झलकता है, जिसका समाज के उग्रवादी वर्ग द्वारा दुरुपयोग कर साम्प्रदायिक रंग दे दिया जाता है और इससे देश और समाज के धर्मनिरपेक्ष ढाँचे को चोट पहुँचती है। सबसे प्रभावकारी तर्क यह दिया जाता है कि इससे भाषा, यानी हिंदी, मर जाएगी। इस तरह मूल प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है और सर्वथा एक विदेशी भाषा अपना वर्चस्व रखती है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्यों एक पूरी तरह भारतीय भाषा अपना अस्तित्व और वर्चस्व स्थापित नहीं कर सकती? क्यों ज्ञान और अध्ययन के क्षेत्रों में भारतीय भाषाएँ अपना योगदान नहीं दे सकती? क्यों वह भाषा हिंदी नहीं हो सकती, चाहे वह कितनी भी संस्कृतनिष्ठ क्यों न हो?

हिंदी का संस्कृतकरण — सही दिशा में उठाया गया गलत कदम

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया और इसे शासकीय स्तर पर प्रसारित करने

के प्रयास प्रारंभ हुए। सबसे पहली आवश्यकता प्रशासनिक कार्यों के लिए हिंदी को तैयार करने की थी और इसके लिए शब्दावली बनाने के प्रयास प्रारम्भ हुए। चूँकि हमारा पूरा प्रशासनिक ढाँचा अंग्रेजी शासन पर आधारित था और सीमित बदलावों के साथ ज्यों का त्यों अपना लिया गया था, अतः अंग्रेजी की प्रशासनिक शब्दावली का हिंदीकरण प्रारम्भ हुआ। इसे हम आज हिंदी के संस्कृतकरण करने का नाम देते हैं। यह अंग्रेजी की प्रशासनिक शब्दावली के पारिभाषिक शब्दों को संस्कृत के माध्यम से हिंदी में लिखने का प्रयास था। लेकिन यह शब्दावली कहीं-कहीं इतनी कृत्रिम और जटिल हो गई थी कि हंसी-मजाक और व्यंग्य का विषय भी बन गई थी और आज तक ऐसा ही है। “उसे शुद्ध हिंदी में समझा दो” जैसे वाक्य इसका अच्छा उदाहरण हैं। प्रसिद्ध अभिनेता संजीव कुमार द्वारा एक फ़िल्म में शुद्ध हिंदी के उपयोग का मजाक के रूप में चित्रण इसका एक और उदाहरण है। इसके साथ ही शासकीय सूचना माध्यम, जैसे — आकाशवाणी के बारे में प्रसिद्ध सिने अभिनेता आई.एस. जौहर और जॉनी वाकर की टिप्पणी याद आती है, जो उन्होंने आकाशवाणी पर प्रसारित हिंदी समाचारों पर की थी। इन समाचारों का आरम्भ इस वाक्य से होता था, “अब आप देवकीनन्दन खत्री से हिंदी में समाचार सुनिये” उन्होंने कहा की इसे होना चाहिए, “अब आप देवकीनन्दन खत्री से समाचारों में हिंदी सुनिये।” यह टिप्पणी प्रकारान्तर से प्रायः सभी अहिंदी भाषियों की भावनाओं को शब्द देती है।

हिंदी का संस्कृतकरण — भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा का प्रस्थान बिंदु

हिंदी के संस्कृतकरण पर रवीन्द्रनाथ टैगोर की बोलपुर बंगाल में लाला भगवान दीन से भेंट के दौरान कही गई एक बात गौरतलब है, वे उनसे कहते हैं — “बंगाली ने संस्कृत से शब्दावली ली है, विशेष रूप से अध्ययन व दर्शन के क्षेत्र में। पर हिंदी को संस्कृत से ले लेने की क्या ज़रूरत रह गयी थी, क्योंकि कबीर ने तो इसकी सारी शब्दावली अपनी रचनाओं में हिंदी में पहले से ही दे दी थी।” लाला भगवान दीन हिंदी के संस्कृतकरण के बारे में विपरीत राय रखते थे। इस बारे में ‘दिल्ली प्रेस पत्रिका’ समूह की पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित अपने लेखों में वह सुझाव देते रहते थे। वे सुझाव कितने कारगर थे, इसे उनके द्वारा सुझाए गए एक उदाहरण से समझा जा सकता है। वे अंग्रेज़ी के ‘रिप्रिज़ेन्टेटिव’ के लिए ‘प्रतिनिधि’ शब्द को एक कठिन विकल्प बताते हुए लिखते हैं कि बोलचाल की भाषा इसके लिए एक शब्द देगी ‘ओरिया’ यानी ‘ओर से’ और उनके अनुसार ये आसानी से प्रचलित हो जाएगा। यह शब्द तो वे शासन और आमजन तक नहीं पहुँचा पाए, लेकिन हम देखते हैं कि ‘प्रतिनिधि’ छाया हुआ है, भाषाई रूप से भी और राजनैतिक रूप से भी। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कोई भाषा या शब्द कठिन नहीं होते, बस उनका उपयोग और चलन उन्हें सरल बना देता है। भाषाओं के विकास क्रम और इतिहास का अध्ययन कर हम यह जान सकते हैं। लेकिन हमारा बौद्धिक वर्ग इसे स्वीकारना नहीं चाहता और

हिंदी के संस्कृतकरण को राजनीति प्रेरित मानता है। जबकि अंग्रेज़ी में ग्रीक, लैटिन, जर्मन, फ्रेंच, के शब्दों, वाक्यों, वाक्यांशों का तथा कठिन शब्दों का प्रयोग विद्वता की निशानी माना जाता है और यही वर्ग इसे स्वाभाविक मानता है।

हम यदि अंग्रेज़ी के सभी राष्ट्रीय स्तर के सम्पादकीय और सम्पादकीय पृष्ठ के आलेखों का अध्ययन करें, तो इस प्रवृत्ति का अनुभव कर सकते हैं। दिलीप पाडगावकर जब *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* के सम्पादक थे, तब उनके सम्पादकीय की भाषा इतने कठिन शब्दों से भरी होती थी कि पूरी तरह समझने के लिए शब्दकोश की सहायता लेनी पड़ती थी। अंग्रेज़ों की तरह रहने, व्यवहार करने और लिखने वाले लेखक नीरद सी. चौधरी की पुस्तकों में ग्रीक, लैटिन, जर्मन, फ्रेंच शब्दों, वाक्यों, वाक्यांशों का बहुतायत में प्रयोग हम देख सकते हैं और यह शैली उन्होंने 19वीं सदी के यूरोपीय लेखन का अनुसरण कर अपनाई थी, जिसका असर आज के अंग्रेज़ी लेखन में भी मिल जाता है। लेकिन इस प्रवृत्ति पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगता और इनका भक्त अंग्रेज़ीदां तबका हिंदी में संस्कृत शब्दों के उपयोग को प्रतिगामी ठहराता है। दुःख की बात यह है कि हिंदी का विद्वत समाज भी इसमें उनके साथ खड़ा नज़र आता है। ये वर्ग यह भी भूल जाते हैं कि धर्म, दर्शन, संगीत, कला, अर्थशास्त्र, राजनीति और विज्ञान में भी हम नया करते रहे थे और इन विषयों की हमारी अपनी शब्दावली रही है। आयुर्वेद, संगीत इत्यादि की हमारी शब्दावली हमें कठिन लगती है, लेकिन जब हम अंग्रेज़ी के

विज्ञान विषयों की शब्दावली देखें तो उसमें भी लैटिन, ग्रीक इत्यादि भाषाओं से लिए गए कठिन शब्द हैं। उदाहरणार्थ — बायोलॉजी, बॉटनी और जूलॉजी की तो सारी पारिभाषिक शब्दावली बहुत कठिन है, लेकिन हमें इसमें कुछ भी कठिन नहीं लगता, वहीं संस्कृत शब्दों का प्रयोग कठिन लगता है। यही भूल स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक शब्दावली विकसित करने वालों ने की थी। उन्होंने अंग्रेज़ी शब्दों का सीधे अनुवाद दिया, जबकि उन्हें इसके लिए संस्कृत और दूसरी भारतीय भाषाओं की शब्द सम्पदा का उपयोग करना चाहिए था। हमने अपने प्राचीन संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के ग्रंथों से सभी विषयों की शब्दावली लेकर उसका व्यापक प्रचार किया होता तो वे शब्द कठिन नहीं होते, क्योंकि कोई भी शब्द और भाषा कठिन नहीं होती, बात सिर्फ़ उसके उपयोग होने की है। एक और बात यहाँ ध्यान रखने की है कि प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की अधिकांश शब्दावली संस्कृत से ही निकली है। अतः ऐसी हिंदी जिसमें संस्कृत शब्दावली होगी, अहिंदी भाषियों के लिए कम कठिन होगी। अशोक के बाद ये सारी बातें एक और व्यक्ति ने अनुभव कर ली थी, वे थे महात्मा गाँधी। राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा पर उनकी नीति हमें मार्गदर्शन दे सकती है। वर्तमान में यह बहुत आवश्यक हो गया है, क्योंकि विद्यालयी पाठ्यक्रम में तीसरी भाषा के रूप में संस्कृत को हटाकर जर्मन भाषा लागू करने के बाद फ्रेंच भाषा को स्थान देने की कवायद प्रारम्भ हो चुकी है। देश के उत्तरी भाग में तीसरी भाषा के रूप में दक्षिण की किसी एक भाषा

का अनिवार्य विकल्प जहाँ विद्यार्थियों को देश की एक और भाषा से जोड़ेगा, वहीं देशवासियों को भी। क्योंकि अहिंदी भाषी प्रायः यह शिकायत करते हैं कि उन पर तो हिंदी 'थोप' दी गई है, लेकिन हिंदी भाषी इससे मुक्त हैं और वे तीसरी भाषा के रूप में अंग्रेज़ी के अलावा जर्मन या फ्रेंच का विकल्प पाकर उनसे एक कदम आगे हो जाते हैं।

गाँधीजी ने इस भावना को भी भांप लिया था और जिस भाषा नीति को कार्यरूप दिया था, वो आज भी उतनी ही कारगर हो सकती है। गाँधीजी ने हिंदी और हिंदुस्तानी को एक औपनिवेशिक उत्पाद के दर्जे से मुक्त कर राष्ट्रीय अवधारणा के रूप में सामने रखा था। पर ऐसा नहीं है कि उनके इस विचार को निर्विरोध स्वीकार कर लिया गया। उन्होंने सर्वप्रथम दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार शुरू कर अपने इस अभियान का प्रारम्भ किया। 1918 में मद्रास के गोखले हॉल में एनी बेसेंट की अध्यक्षता में हिंदी प्रचार शुरू हुआ। दक्षिण हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की गई। हिंदी प्रचार एक राष्ट्रीय व्रत हो गया, जिसमें दक्षिण के नौजवान भी बड़ी संख्या में कूद पड़े।

गाँधीजी के नेतृत्व में कार्य करने वाले, देश की आज़ादी के लिए संघर्ष करने वाले लोगों के सामने, नेताओं और जनता के सामने यह समस्या थी कि स्वतंत्रता के बाद समूचे देश की राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय कार्यों में व्यवहार की भाषा क्या होगी। अतः हिंदी के समस्त प्रान्तों में विशेषतः दक्षिण भारत में जो हिंदी शिक्षा के प्रति समर्पण और आकर्षण बढ़ा, वह हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने

की राष्ट्रीय भावना से अभिप्रेरित था। हिंदी सीखना और सिखाना राष्ट्र निर्माण का कर्तव्य बन गया। इन बड़ी संस्थाओं के कार्यक्षेत्र अत्यंत विस्तृत, व्यापक और हिंदी प्रचार-प्रसार और शिक्षा को सुव्यवस्थित करने के लिए मार्गदर्शक बनें। प्रदेश स्तर पर अनेक संस्थाएँ बनीं, जिनमें प्रमुख थीं — हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, स्थापना 1935 ई., मैसूर हिंदी प्रचार परिषद्, बेंगलुरु, 1943 ई., महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे, 1945 ई., हिंदुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा, 1942 ई., केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनन्तपुरम् और कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़।

लेकिन गाँधीजी की भाषा नीति में प्रान्तीय भाषाओं को दबाने-सताने के भाव का लेशमात्र भी स्थान नहीं था। सन् 1935 में काका साहेब कालेलकर ने गाँधीजी से कहा कि लोगों में यह अफ़वाह फैली हुई है कि हिंदी प्रचार का उद्देश्य प्रान्तीय भाषाओं का दमन है। तब गाँधीजी ने साहित्य सम्मेलन के मंच से घोषित किया — “मेरा कहना बराबर यही रहा है कि प्रान्तीय भाषाओं को हम ज़रा भी आहत नहीं करना चाहते, उनका दमन या नाश करना तो दूर की बात है।”

उनकी यह सोच उनके द्वारा सम्पादित *द इंडियन ओपीनियन* समाचार-पत्र में नज़र आती है, जिसे उन्होंने अंग्रेज़ी के साथ गुजराती, हिंदी और तमिल में भी प्रकाशित किया। तब वे बहुभाषी भारत के अनुरूप भाषाई प्रयोग कर रहे थे और उनका यह निष्कर्ष था कि अंग्रेज़ी में काम करके हम गुलामी को ही मज़बूत करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह गाँधीजी की स्पष्ट भाषा नीति का ही परिणाम था कि स्वतंत्र भारत में नागरी लिपि में लिखित हिंदी को संघ की राजभाषा की मान्यता दी गई।

संपर्क भाषा हिंदी — स्वीकरण की समस्या
भारतीय संविधान के अनुसार हिंदी राजभाषा तो बना दी गई, पर राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई। उसका राष्ट्रभाषा बनना उतना आवश्यक भी नहीं जितना राष्ट्रीय एकता की मज़बूत कड़ी के रूप में एक राष्ट्रीय संपर्क भाषा का होना है। आज संपर्क भाषा की यह भूमिका प्रशासकीय रूप से अंग्रेज़ी ने ले ली है और व्यावहारिक रूप से हिंदी ने। इससे यह निष्कर्ष हम निकाल सकते हैं कि एक संपर्क भाषा की आवश्यकता राजनैतिक उठापटक से परे है और यह भूमिका हिंदी बहुत अच्छे से निभा सकती है और निभा भी रही है, बस इसे प्रशासनिक जामा पहनाया जाना होगा। इसके लिए हिंदी भाषियों को उदार बनना होगा और कुछ अतिरिक्त प्रयास करने होंगे।

सबसे पहला कदम यह हो सकता है कि विद्यालयी शिक्षा में तीसरी भाषा के रूप में किसी दूसरी भारतीय भाषा को, विशेष रूप से दक्षिण की किसी भाषा के शिक्षण का विकल्प और उसे सिखाना होगा। जैसा कि गाँधीजी ने भी किया था। इसके लिए हिंदी भाषी राज्यों को दक्षिण भारत या शेष भारत के राज्यों से शिक्षक आमंत्रित करने चाहिए। सारी भाषाओं का विकल्प सभी जगह देना तो संभव नहीं है, अतः किसी एक भाषा का एक विद्यालय में पाठन कराया जा सकता है।

यह एक कठिन कदम होगा, क्योंकि इस बारे में सबसे प्रबल विरोध अभिभावकों की ओर से और निजी विद्यालयों के प्रबंधन की ओर से होगा। यह वही वर्ग है जो तीसरी भाषा के रूप में संस्कृत का भी प्रबल विरोधी रहा है और इसे एक 'मृतभाषा' मान अपने बच्चों और विद्यार्थियों पर थोपा हुआ मानता है। उन्हें बताना होगा कि तीसरी भाषा के रूप में ये भारतीय भाषाएँ 'जीवित भाषाओं' से ही ली गई हैं और राष्ट्रीय एकता की कड़ी मजबूत करने के लिए यह एक आवश्यक कदम है।

यही वर्ग इस कदम की उपयोगिता पर भी प्रश्न चिह्न लगाएगा, अतः उन्हें समझाना होगा कि उपयोगिता तो फ्रेंच और जर्मन भाषाओं की भी नहीं है, क्योंकि पूरी दुनिया में अंग्रेजी ही संपर्क भाषा है — व्यवहार की भी, सत्ता की भी और ज्ञान की भी। केवल एक देश विशेष में उसकी भाषा प्रभाव रखती है, जैसे — जर्मनी में जर्मन। ये देश भी अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव से आक्रांत हैं और अपनी भाषाओं के प्रसार के लिए कई तरह की योजनाएँ चलाते हैं, छात्रवृत्ति आदि देते हैं। अतः यदि अभिभावक इसका लाभ उठाना चाहते हैं तो उन्हें इन भाषाओं को अलग से चौथी भाषा के रूप में सिखाने की व्यवस्था करनी चाहिए। फिर इस हेतु इन देशों ने अपने केन्द्र भी खोले हैं, जहाँ ये भाषाएँ सिखाई भी जाती हैं। वैसे भी इन दो यूरोपीय भाषाओं को उनकी अभिजात्य प्रतिष्ठा के कारण ही ज्यादा महत्व दिया जाता है, उपयोगिता के कारण नहीं। अतः यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि तीसरी भाषा तो कोई भारतीय भाषा ही हो।

परंतु इस पर अभिभावकों का सबसे प्रभावकारी तर्क होगा कि इससे बच्चों पर अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। इसका निराकरण उन्हें विद्यालयों में सतत चलती ढेर सारी पाठ्यक्रम इतर गतिविधियों को, जो संपूर्ण विकास के नाम पर विद्यार्थियों से कराई जाती हैं और उन्हें ढेर सारा गृह कार्य दिया जाता है, के प्रभावी प्रबंधन द्वारा करने को कहा जा सकता है।

अगला कदम हिंदी भाषी राज्यों द्वारा अपने वित्तीय संसाधनों से अहिंदी भाषी राज्यों में हिंदी शिक्षक भेजना होगा। ये शिक्षक उन राज्यों में न केवल हिंदी सीखाएँगे, वरन् अहिंदी भाषी हिंदी अध्यापकों की एक पीढ़ी भी तैयार करेंगे जो भविष्य में उस राज्य में हिंदी पढ़ाएँगे।

इन छोटे लेकिन प्रभावशाली कदमों से हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ेगी। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने पर नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक एक संपर्क भाषा बनाने पर जोर दिया जाना चाहिए, जो एक गाँधीवादी कदम होगा — सर्व-समावेशी, सर्व-स्वीकार्य और सर्वव्यापी।

उपसंहार

भाषा का प्रश्न एक जटिल प्रश्न है और एक संवेदनशील मुद्दा भी। भारत जैसे बहुभाषी समाज में यह और भी जटिल हो गया है या बना दिया गया है। भारतीय इतिहास की यह त्रासदी रही है कि हम अपने में से किसी एक का बढ़ता प्रभाव और नेतृत्व स्वीकार नहीं कर पाते और इसका लाभ बाहरी तत्व लेते रहे हैं। हमारा इतिहास इसका गवाह है। अंग्रेजी का प्रभुत्व इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। हमें इस बारे में ठोस कदम

उठाने होंगे और पहल हिंदी भाषियों को ही करनी होगी, क्योंकि वह सबसे बड़ा वर्ग है और उसकी इस पहलू पर उदारता राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है। पर राष्ट्रीय एकता के लिए परम आवश्यक है एक संपर्क भाषा, जो हिंदी ही हो सकती है और है भी, बस उसे अपनी इस शक्ति को पहचानकर समाधान प्रस्तुत करना होगा। उसे राज नहीं करना है, बल्कि सुराज का वाहक बनना है। अंग्रेजी ने शासन और जनता के बीच जो दूरी पैदा की है, उसे हिंदी मिटा सकती है।

संदर्भ

- गाँधी, एम.के. 2014. *हिन्द स्वराज*. सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी
- डी.आर. भंडारकर और अशोक. *भारत छोड़ो आंदोलन*. ए.जे. प्रिंटर्स, बहादुरशाह जफ़र मार्ग, नयी दिल्ली.
- राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्. 1999. *गाँधी के शैक्षिक विचार*. राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नयी दिल्ली.
- सत्यामूर्ति. *शिक्षा के विविध आयाम — महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन*. अरुण प्रकाशन, दिल्ली.
- सूचना और प्रसारण मंत्रालय. *संपूर्ण गाँधी वाङ्मय* (प्रथम आवृत्ति). प्रकाशन प्रभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली.

उच्च शिक्षा की प्रवृत्तियाँ एवं चुनौतियाँ

निशात फ़ात्मा*

किसी देश का विकास उस देश की शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करता है, क्योंकि देश की उन्नति के लिए हर व्यक्ति जिम्मेदार है और वह ही देश को अपने ज्ञान, संस्कार और अच्छे आचरण के बल पर समृद्धि की ओर ले जा सकता है। आज का शिक्षित वर्ग ही देश की अर्थव्यवस्था को सुचारु रूप से चला सकता है, किंतु अगर शिक्षा प्रणाली ही ठीक न हुई तो उस देश का भविष्य अंधकारमय हो सकता है। इसलिए आज आवश्यकता है एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की जिससे व्यक्ति में ज्ञान के साथ-साथ अच्छे आचरण का भी विकास हो सके, वह भावनात्मक रूप से सुरक्षित महसूस कर सके, रोज़गार के अवसर प्राप्त कर सके और उसकी रचनात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए भी पर्याप्त अवसर उपलब्ध हों। 'मेक इन इंडिया' और 'डिजिटल इंडिया' जैसी योजनाओं को सफल बनाने के लिए हमारे विद्यार्थियों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा की आवश्यकता है।

‘शिक्षा’ शब्द मोटे तौर पर दो रूपों में प्रयोग में लाया जाता है — व्यापक रूप में तथा संकुचित रूप में। व्यापक रूप में शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मुनष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा प्रणाली की क्या उपलब्धि है, यदि हम इस ओर ध्यान दें तो संभवतः हमें कुछ संतोषजनक आँकड़े मिलेंगे। आज हमारे देश में तकरीबन 10 लाख स्कूलों में 2025 लाख बच्चों को पढ़ाने

का काम लगभग 55 लाख शिक्षक कर रहे हैं। 82 प्रतिशत रिहायशी इलाकों में एक किलोमीटर की परिधि के अंदर प्राथमिक और 75 प्रतिशत रिहायशी इलाकों में तीन किलोमीटर के दायरे में उच्च प्राथमिक पाठशालाएँ हैं। माध्यमिक स्तर की परीक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों में कम से कम 50 प्रतिशत विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। इन आँकड़ों के बावजूद भारत के 37 प्रतिशत लोगों में साक्षरता कौशलों का अभाव है। प्राथमिक स्कूलों में विद्यार्थियों के स्कूल छोड़ने की दर 53 प्रतिशत है और उच्च शिक्षा हेतु पंजीकरण कराने वाले विद्यार्थियों का अनुपात भारत में विश्व में सबसे

कम यानी 11 प्रतिशत है, जबकि अमेरिका में यह 83 प्रतिशत है। 11वीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिए अनुमानित राशि ₹12,44,797 करोड़ का ही प्रावधान किया गया था।

जिस समय दुनिया ने विद्यालयों की कल्पना भी नहीं की थी, उस समय भारत में विश्वविद्यालय हुआ करते थे। विश्व स्तरीय नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय और विक्रमशिला विश्वविद्यालय की पावन धरती पर शिक्षा व्यवस्था की यह विसंगतियाँ कहीं-न-कहीं मन को आहत करती हैं। आज चारों तरफ़ अनास्था का माहौल पनप रहा है। गुरु-शिष्य संबंध का घनत्व घट रहा है। उच्च शिक्षा की स्थिति दिन पर दिन खराब होती जा रही है। शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद का जितना प्रतिशत खर्च होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है। रक्षा और अन्य मंत्रालयों का बजट लंबा-चौड़ा होता है पर शिक्षा की अनदेखी होती है। समय पर कार्यों के पूर्ण न होने के कारण हड़ताली प्रवृत्ति विकसित होती जा रही है, जिसका परिणाम अंततः विद्यार्थियों को ही भुगतना पड़ता है। अतः हमें व्यवस्थागत मुद्दों पर ध्यान देने व उन्हें नियोजित करने की आवश्यकता है ताकि हम उन अनेक अच्छे विचारों को कार्यान्वित कर सकें जिनके बारे में पहले भी चर्चा की जा चुकी है, यथा —

- ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना।
- सुनिश्चित करना कि पढ़ाई रटत प्रणाली से मुक्त हो।
- पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन करना कि वह पाठ्यपुस्तक केन्द्रित न बनकर बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर उपलब्ध कराए।

- परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना।
- एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास, जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों।

उच्च शिक्षा में सुधार हेतु 1986 में रोज़गारोन्मुखी नई शिक्षा नीति भी लाई गई, किन्तु उसका क्रियान्वयन प्रभावी रूप से नहीं हुआ और आज भी हम मूल्यपरक शिक्षा नीति की बाट जोह रहे हैं। नैसकॉम और मैकिन्से के ताज़ा शोध के मुताबिक मानविकी में 10 में एक और अभियंत्रण में डिग्री प्राप्त चार में से एक भारतीय विद्यार्थी ही नौकरी पाने योग्य है। राष्ट्रीय मूल्यांकन व प्रत्यापन परिषद् (नैक) का शोध बताता है कि इस देश के 90 फ़ीसदी कॉलेजों एवं 70 फ़ीसदी विश्वविद्यालयों का स्तर बेहद कमज़ोर है। स्वतंत्रता के बाद 50 सालों में 44 निजी संस्थानों को डीम्ड विश्वविद्यालयों का दर्जा मिला। पिछले 16 वर्षों में 69 और निजी विश्वविद्यालयों को मान्यता दी गई। शिक्षा के वैश्वीकरण के इस दौर में महँगे कोचिंग संस्थान, किताबों की बढ़ती कीमत, डीम्ड विश्वविद्यालय और विद्यार्थियों में सिर्फ़ सरकारी नौकरी पाने की एक आम अवधारणा का पनपना आज की उच्च शिक्षा की अहम चुनौतियाँ हैं।

इस उपभोगतावादी संस्कृति ने हमें 'स्व' से अलग कर दिया है। इस शिक्षा पद्धति का शरीर तो सक्षम है, पर आत्मा कमज़ोर है। इस रुग्ण आत्मा की कमज़ोरी को दूर करना होगा। युवा पीढ़ी के अंदर की बेचैनी व छटपटाहट को समझते-परखते हुए उसे

भटकाव से रोकना होगा। मन-मस्तिष्क और हाथों के सुंदर समन्वय से पूर्ण मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया का द्वार खोलना होगा। हमें गुणात्मक शिक्षा को अपनाना होगा, जिसमें नैतिकता का पुट हो।

सम्प्रति भारत में जो शिक्षा पद्धति प्रचलित है, उसके कई पक्षों में सुधार की आवश्यकता है। हमारी शिक्षा व्यवस्था पर एक वृहद् जनसमूह को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व है, परंतु साधन और संसाधन बहुत सीमित हैं, परिस्थितियाँ भी अनुकूल नहीं, फिर भी हम लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील रहें और दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ें तो इस निराशाजनक स्थिति से उबर सकते हैं। अगर कुछ चुनौतियों की बात करें तो ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी, जो व्यक्ति को समाज में स्थान दिला सके। आज औद्योगिक क्रांति के कारण नए भारतीय समाज का निर्माण हो रहा है जिसमें कई शाश्वत मूल्यों का धीरे-धीरे लोप होता जा रहा है। भौतिक सम्पन्नता तो आई है, परंतु नैतिक मूल्यों का हास हो गया है या वास्तव में, हम शिक्षा के मूल मर्म से दूर हो गए हैं। शिक्षा की प्रासंगिकता की बात की जाए तो उच्च शिक्षा में व्यावसायिकता इतनी हावी होती जा रही है कि लैंगिक भेदभाव, महिलाओं के प्रति हिंसा, स्वास्थ्य, सुरक्षा जैसे मुद्दे अनावश्यक लगते हैं। अंकों की दौड़ में चाहे-अनचाहे व्यक्तित्व विकास की बहुत-सी समस्याएँ अनसुलझी रह जाती हैं, जोकि भविष्य में निराशा, हताशा और कुंठा के रूप में अपराधी वृत्तियों को जन्म देती हैं। वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर नौकरी प्राप्त करना है और अगर दुर्भाग्यवश शिक्षा प्राप्त करके भी नौकरी न मिले तो...। इस भय से दूर क्या यह शिक्षा व्यक्ति

को यह स्वतंत्रता देती है कि वह नौकरी न मिलने पर भी स्वरोजगार से अपने जीवन को सफल बना सकता है। यह एक गंभीर समस्या है जो हमारी शिक्षा को अर्थहीन बनाती है। आने वाले समय में शिक्षा की परिभाषा में व्यापक परिवर्तन करने होंगे जिससे शिक्षा उपयोगी और लक्ष्य आधारित हो।

सबसे बड़ी त्रासद स्थिति यह है कि विश्व के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों की सूची में भारत का कोई विश्वविद्यालय नहीं है, अर्थात् विश्व को भारत की उच्च शिक्षा ने प्रभावित नहीं किया है। देश में साक्षरता दर तो बढ़ी है, लेकिन हम गुणवत्ता नहीं बढ़ा पाए हैं। यहाँ कक्षाओं में केवल किताबी ज्ञान मिलता है जबकि आज व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता अधिक महसूस की जा रही है। देश में वैज्ञानिक शोध और अनुसंधान की दशा विचारणीय है और हमारे विश्वविद्यालय एम.फिल और पीएच.डी की सिर्फ डिग्री बाँट रहे हैं। कई विश्वविद्यालयों में तो धन लेकर डिग्री देने का खुला खेल चल रहा है। रही-सही कसर स्व-वित्तपोषित विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों ने पूरी कर दी है, जहाँ शिक्षकों की कमी है और जो हैं भी, उनकी स्थिति दयनीय है। उनकी नियुक्ति प्रक्रिया में अनेक विसंगतियाँ हैं। महाविद्यालयों में कई तरह के शिक्षक कार्यरत हैं, जिनकी नियुक्ति प्रक्रिया के मापदंड भी अलग-अलग हैं। यही नहीं स्व-वित्तपोषित महाविद्यालयों में अत्यंत अव्यवस्था है। इनमें मनमानी फ़ीस वसूल कर विद्यार्थियों का तो शोषण किया ही जाता है, साथ ही शिक्षकों के लिए बुनियादी सुविधाओं का भी अभाव है। अधिकांश महाविद्यालयों में योग्य शिक्षकों का अनुमोदन करा लिया जाता है, किंतु उनसे पढ़ाया नहीं जाता। जहाँ

पढ़ाया जाता है, वहाँ उन्हें ₹8000 से ₹15000 तक के अल्प वेतन पर रखा जाता है, जिससे उनका मनोबल गिर जाता है। वे अपने जीवन की समस्याओं में ही उलझे रहते हैं। उन्हें अगले वर्ष नौकरी पर रखा जाएगा या नहीं, इस बात की भी कोई गारंटी नहीं होती। प्रबंधक की जी-हुजूरी पर नौकरी टिकी होती है। जिस दिन प्रबंधक ने न कहा, उस दिन नौकरी से बाहर। ऐसी स्थिति को सुधारने के लिए सरकार को भर्ती प्रक्रिया आरंभ कर शिक्षकों की कमी को दूर करना होगा तथा निजी महाविद्यालयों में विश्वविद्यालयों की ओर से वेतन निर्धारण कर शिक्षकों की स्थिति में सुधार करना होगा। विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों को यू.जी.सी. के मानक नैक (एन.ए.ए.सी.) का पालन करने के लिए बाध्य किया जाए ताकि शिक्षण संस्थानों की हालत में सुधार हो। सरकार को उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या बढ़ाने के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता को भी श्रेष्ठ स्तर पर लाना होगा। देश की उच्च शिक्षा को मूलभूत संकल्पना के साथ आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार ढालना होगा। इस हेतु इसके अनुरूप पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम की रचना करनी होगी, शोध कार्यों को बढ़ावा देना होगा, शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ानी होगी तथा देश की उच्च शिक्षा मूल्य आधारित बने इसलिए शिक्षा में स्वायत्तता होनी चाहिए। उच्च शिक्षा के द्वारा आर्थिक व्यवस्था में सुधार हो, ऐसी शिक्षा का प्रारूप तैयार करना होगा।

पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले बच्चों के लिए दो प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करनी होगी और इन बच्चों को दोनों में से किसी एक पाठ्यक्रम को चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पहले पाठ्यक्रम

के अंतर्गत स्थानीय व्यावसायिक संस्थानों द्वारा दो वर्षीय कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम सम्मिलित करना होगा। दूसरे पाठ्यक्रम के अंतर्गत विद्यार्थियों को विज्ञान और मानविकी विषयों में शिक्षा देने के लिए एक तीन वर्षीय पाठ्यक्रम में शामिल करना होगा। इन दोनों पाठ्यक्रमों में से शीर्ष 10 प्रतिशत विद्यार्थियों को अनिवार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश की इजाजत मिलनी चाहिए। इस प्रकार पढ़ाई पूरी न करने वाले लोगों को न केवल शिक्षा दी जा सकती है, बल्कि उनके लिए रोजगार भी सुनिश्चित कराया जा सकता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के शुरुआती दौर में भारत की शिक्षित युवा पीढ़ी ने सूचना और संचार तकनीक के क्षेत्र में उसे अत्यंत सम्मानजनक स्थान दिलाया है। नई कार्य संस्कृति के अंतर्गत भारत की वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र की क्षमताओं को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भरपूर सराहना मिल रही है, लेकिन उच्च शिक्षा के संबंध में चिंताजनक आँकड़े हमारी प्रगति पर पानी फेरते हुए दिखाई दे रहे हैं।

उच्च शिक्षा में सुधार के लिए सरकार को न सिर्फ उच्च शिक्षण संस्थानों की संख्या बढ़ानी होगी, बल्कि उसकी गुणवत्ता को भी श्रेष्ठ स्तर पर लाना होगा। देखने वाली बात यह है कि देश में सर्वोच्च गुणवत्ता वाले शैक्षणिक संस्थान कहाँ तक सफलता प्राप्त कर पाते हैं। एक तरफ़ सरकार शिक्षा में सुधार की योजनाएँ बनाने में दिलचस्पी दिखाती है, तो दूसरी ओर योजनाओं के सही क्रियान्वयन की ओर कोई सकारात्मक पहल नहीं की जाती है। इससे यह

स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा में किए जा रहे भेदभाव को समाप्त करने की दिशा में कदम बढ़ाएँ तो शिक्षा की गुणवत्ता कायम हो सकती है। एनडीटीवी इंडिया के अनुसार देश के विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों की जो भयावह स्थिति सामने आ रही है, उसमें सुधार की बहुत आवश्यकता है। यह तभी संभव है जब राज्य सरकारें नींद से जागकर बेरोजगारों के लिए नौकरी की व्यवस्था करें। परीक्षाफल समय पर जारी करें और नियुक्त होने वाले उम्मीदवारों को समय पर नियुक्ति पत्र जारी करें। सरकारों के बदलने का प्रभाव किसी भी प्रतियोगी परीक्षा पर न पड़े। जो प्रक्रिया चल रही है, वह आगे बढ़ती रहे, ऐसा न हो कि सरकार बदलते ही भर्ती प्रक्रिया पर रोक लगा दी जाए और नयी व्यवस्था आरंभ कर दी जाए। ऐसा करने से विद्यार्थियों का धन और समय, दोनों ही बर्बाद होता है। एक तथ्य यह भी है कि 21वीं सदी की उच्च शिक्षा को तब तक स्तरीय नहीं बनाया जा सकता, जब तक कि भारत की स्कूली शिक्षा 19वीं सदी में विचरण करती रहेगी। स्कूली शिक्षा की मूलभूत सुविधाओं में पिछले दशक में वृद्धि हुई है, लेकिन वहाँ भी समस्या गुणवत्ता की है। भारत के आधे से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में कोई भी तकनीकी गतिविधि नहीं होती, जिससे भारतीय बचपन सूचना और तकनीकी के युग में भी

बहुत पिछड़ा हुआ है। अब समय आ गया है कि चॉक और ब्लैक-बोर्ड के साथ-साथ शिक्षा के लिए तकनीक का प्रयोग किया जाए। सरकारी विद्यालयों में 'स्मार्ट' कक्षाओं की व्यवस्था हो, ताकि उच्च कक्षाओं तक पहुँचते-पहुँचते विद्यार्थी आधुनिक तकनीक में पूर्ण-रूप से पारंगत हो जाएँ। नयी सोच, नई विचारधारा और नए परिवेश का उच्च शिक्षा में संचार हो सके। गुणवत्ता में सुधार के लिए तुरंत एक्शन प्लान की आवश्यकता है। पुस्तकालय, शोध पत्रों, शोध-शोधकों की संख्या में वृद्धि करनी होगी और विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ाने के साथ-साथ गुणवत्ता में वृद्धि और मूल्यांकन में सुधार करना होगा।

वास्तव में, अगर देश को 2020 तक सुपर पावर बनाना है तो उसके लिए पढ़े-लिखे तथा दक्ष कर्मियों की बड़ी संख्या में ज़रूरत होगी और इसके लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सख्त परिवर्तन करने होंगे। सरकार इस बारे में ध्यान दे रही है, जोकि एक उत्तम संकेत है। देश और समाज चाहता है कि उच्च शिक्षा नीतियों में जल्द बुनियादी बदलाव लाकर इन्हें क्रियान्वित किया जाए ताकि देश के शैक्षणिक विकास का मानचित्र गौरवशाली बना रहे। ये सभी सुझाव उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ और मुद्दे हैं जो सभी के सहयोग और भागीदारी से पूर्ण किए जा सकते हैं।

संदर्भ

जिज्ञासु, जयंत. 2014. 'भारतीय उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ.' <https://readerblogs.navbharattimes.indiatimes.com/ANCHHUA-KONA/जयन-त-ज-ज-ज-स8/से लिया गया>.

-
- नंदा, प्रशांत के. 06 सितम्बर, 2017. द वर्ल्ड यूनिवर्सिटी रैंकिंग्स 2018 — आई.आई.एस.सी. स्लाइड्स, नो इंडियन इंस्टीट्यूट इन टॉप 200. [https://www.livemint.com/Education/EtUBYaH5PAde3y1u325PKO/](https://www.livemint.com/Education/EtUBYaH5PAde3y1u325PKO/THE-World-University-Rankings-2018-IISC-slides-no-Indian-i.html) THE-World-University-Rankings-2018-IISC-slides-no-Indian-i.html से लिया गया.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- सिंह, प्रणय विक्रम. 2009. शिक्षा व्यवस्था के सुधार के लिए आवश्यक है धन से अधिक धुन. <https://hindi.yourstory.com/read/db0e466639/more-than-money-is-nee> से लिया गया.

विद्यालयी शिक्षा का समकालीन परिप्रेक्ष्य

ऋषभ कुमार मिश्र*

इस लेख में भारतीय समाज के संदर्भ में शिक्षा और विद्यालय की भूमिका पर मनन व्यक्त किया गया है। लेख का आरंभ विद्यालय के बदलते संस्थागत स्वरूप पर चर्चा के साथ होता है। तदुपरांत विश्लेषित किया गया है कि विद्यालय अपने कलेवर को बदलने के बावजूद अपने क्रियाकरण में आज भी समाज से अलगाव को बनाए हुए हैं। यह अलगाव केवल विद्यार्थी के अनुभवों को नज़रअंदाज नहीं करता, बल्कि विद्यालय के अन्य हितधारकों, जैसे — अभिभावकों और शिक्षकों की विश्वदृष्टि को भी प्रभावित करता है। इस प्रभाव की व्याख्या लेख के अगले हिस्से में समाज के लिए शिक्षा की भूमिकाओं के सापेक्ष की गई है। इस लेख में लेखक द्वारा विश्लेषित किया गया है कि कैसे शिक्षा की सामाजिक प्रस्तुति शिक्षा के लक्ष्यों को सीमित करने का कार्य करती है?

विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में विद्यालयों की प्रकृति 'सरकारी' से लेकर 'इंटरनेशनल' तक अपने अनेक कलेवर के साथ हमारी ज़रूरत बन गए हैं। बच्चे के छह वर्ष की उम्र के आस-पास पहुँचते ही अभिभावक के जीवन में एक बार पुनः विद्यालय का पदार्पण इस सवाल के साथ होता है कि बच्चे को किस विद्यालय में प्रवेश दिलाएँ? अभिभावक की इस चिंता का मूल उसके दिमाग में घर कर बैठा वह विश्वास है जिसके अनुसार ज्ञान का औज़ार केवल विद्यालय की प्रयोगशाला में ही तैयार होता है। शिक्षा क्या है? और क्यों है? इस सवाल के उत्तर को खोजने का यह लोकप्रिय नज़रिया बच्चे को सीखने की दुनिया के संस्थागत ढाँचों, जैसे — विद्यालय,

महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में ढकेलता है। विद्यालय अभिभावकों में इस भ्रम को बनाए रखते हैं कि यह संस्थागत हस्तक्षेप अबोध बालक को सुबोध नागरिक बनाएगा। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात है कि दोनों ही अवधारणाएँ — अबोध बालक और सुबोध नागरिक — मिथक हैं और ऐसे समाज की देन हैं जो ज्ञान और प्रकारांतर से जीवन को उपयोगितावादी बना देती हैं (यंग, 2007)। वस्तुतः जिस बच्चे को अबोध माना जाता है, उसमें स्वाभाविक जिज्ञासा, कुछ करने की इच्छा, अपने परिवेश के प्रति जागरूकता होती है। वह इस मायने में सुबोध नहीं होता कि उसे व्यवहार और अंतःक्रिया के सामाजिक मानक की समझ है। उसे 'सुबोध नागरिक' बनने

और बनाने की चाह तथा इसके लिए विद्यालय रूपी कारखानों में हो रहे निर्माण ने जीवन में जड़ता भर दी है। विडम्बना है कि इस जड़ता को तथाकथित सफलता का आधूर्ण बताया जा रहा है, जो जीवन की नैसर्गिक यात्रा को त्वरित कर उसके प्रवाह को विच्छिन्न कर रहा है। यह व्यक्ति को उसकी जड़ों से काटकर केवल पत्तों को सींच रहा है। यह उत्साही किंतु प्रतिस्पर्धी और बाजारोन्मुख मस्तिष्क की रचना करने में व्यस्त है। विचारणीय प्रश्न है कि आखिर सीखने में यह यांत्रिकता और जड़ता क्यों है?

सीखना एक स्वाभाविक और नैसर्गिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में कृत्रिमता के जो पक्ष आप देखते हैं, काफी हद तक उसका प्रवेश विद्यालय के द्वारा ही होता है (कुमार, 2004)। इस कृत्रिमता का प्रथम लक्षण विद्यार्थियों को सूचनाओं के जाल में फँसाना है। विद्यार्थी भी अपना अधिकतम समय इस जाल से सूचनाओं को छॉटने, उन्हें याददाश्त के बैंक में जमा करने और इस जमा पूँजी के निवेश करने के तरीकों को सीखने में लगा देते हैं। यदि हम खुद के और अपने बच्चों के विद्यालयी अनुभवों पर विचार करें तो पाएँगे कि पिछली आधी शताब्दी में केवल सूचना के स्रोत और उस स्रोत तक शिक्षार्थी को पहुँचाने के तरीके बदले हैं। हम किताबों की संस्कृति से अब गूगल संस्कृति (इंटरनेट) तक पहुँच चुके हैं, लेकिन इस यात्रा में हमारी चेतना ने अपना चोला नहीं बदला है, वह अभी भी विकास की भौतिकवादी सीढ़ियों को पार करने को उतावली है। ऐसी सीढ़ी जिसके हर कदम पर केवल 'मैं' है, जो 'दूसरे' के होने से विचलित हो जाता है और भागकर सबसे पहले उस मंज़िल

को हासिल कर लेना चाहता है, जो मृगमरीचिका की तरह किसी को भी आज तक प्राप्त नहीं हुई। इस दौड़ ने समाज और विद्यालय के बीच एक दीवार खड़ी कर दी है, जहाँ विद्यालय का दायित्व बन गया है कि वह न केवल हमें समाज के दैनिक सरोकारों में उलझने से बचाए, बल्कि उपलब्धि की 'अंधी दौड़' का विजेता बनने की 'ट्रेनिंग' भी दे।

विद्यालय की रचना जिन तत्वों से हुई है, वे सभी समाज और विद्यालय के बीच की दीवार को मज़बूत करने का कार्य करते हैं। विद्यालय में प्रवेश के साथ ही हर व्यक्ति या तो विद्यार्थी बन जाता है या शिक्षक। विद्यालय के ये दोनों भागीदार विद्यालय आने से पूर्व अपने रोज़मर्रा के अनुभवों की पोटली को विद्यालय और समाज के बीच की दीवार पर टाँग देते हैं। ये दोनों भागीदार विद्यालयी जीवन के इतने ज़बर्दस्त अभ्यस्त बन चुके होते हैं कि वे बिना समय गवाए क्रमशः सीखने और सिखाने में जुट जाते हैं। चूँकि उनके अनुभवों की पोटली तो विद्यालय के बाहर है तो अब उन्हें किताबों की नई दुनिया उपलब्ध कराई जाती है जो पाठ्यचर्या के पन्नों में बंधी हुई है और काले छपे अक्षरों को पढ़ने से खुलती है। इस नई दुनिया को अपनाने की प्रक्रिया में लगा विद्यार्थी, खुद को अपनी दुनिया से काट लेता है और अपना सब कुछ किताबों में बसने वाले ज्ञान को जानने और समझने में झोंक देता है। यदि विद्यालय को ऐसा आभास होता है कि विद्यार्थी स्वयं को अपनी दुनिया से काट नहीं पा रहा है तो वह अनुशासन की कैंची से कटाई-छँटाई करके विद्यार्थी को विद्यालय की दुनिया में फिट कर देता है। किताबों में डूबा बचपन किताबों से पार भी

नहीं जाना चाहता, क्योंकि उन्हें मालूम है कि उनकी सफलता का तिलिस्मी खज़ाना किताबों की चाबी से ही खुलता है (क्लार्क, 2004)। इस प्रकार से विद्यालय, समाज से अपने आपको अलग करते हुए मानकर चलता है कि 'हम जो जानते हैं वही पढ़ाते हैं और हम श्रेष्ठ ही जानते हैं। वस्तुतः होता इसका उलटा है — 'हम जो होते हैं, वही करते हैं'। 'होने' और 'करने' की इन प्रक्रियाओं के बीच विद्यालय में 'पढ़ना' और 'पढ़ाना' एक बहुत ही छोटा हिस्सा है, लेकिन हम सभी केवल इसी छोटे हिस्से को माँजने और चमकाने में लगे हैं। विद्यालय के बाहर की वह दुनिया, जो हमारे जीवन का प्राण है, छूटती जा रही है, जिसका नतीजा है कि हमारी पहचान की सारी रचनाएँ विद्यालय की उपलब्धियों के चारों ओर बुनी जा रही हैं जिसे हम ताउम्र ढोने को तत्पर हैं।

दुनिया का कोई भी विद्यालय बाल विरोधी नहीं होना चाहता है। लेकिन न मालूम क्यों कोई भी बच्चा विद्यालय में रहना नहीं चाहता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि विद्यालय भी समाज की अपेक्षाओं के बोझ के तले दबे हैं! ये अपेक्षाएँ उत्कृष्टता के उन पैमानों का प्रतिफल हैं, जो हमारे 'अपने' नहीं हैं, बल्कि उनके हैं जिनके जैसा हम अपने बच्चों को बनाना चाहते हैं। ज्यादातर हम अपने बच्चों को वैसा ही बनाना चाहते हैं जो हम स्वयं नहीं बन पाए। 'होने' और 'बनने' की इस दुविधा में बच्चा भी फँसा हुआ है और इस दुविधा को दूर करने में विद्यालय भी जुटा हुआ है। इसके लिए विद्यालय ने एक पूरे तंत्र का विकास कर लिया है, जहाँ प्रवेश, परीक्षा और प्रमाण-पत्र का सतत चक्र चल रहा है। ये तीनों ही

गेट पास अपने क्रिया-करण, रीतियों व नीतियों के द्वारा विद्यालय को समाज से तो अलग कर रहे हैं, साथ-ही-साथ इस चक्र से गुज़रने वाले विद्यार्थियों को उनके लोक से भी अलग कर रहे हैं। इस तर्क का उदाहरण किसी भी विद्यालय के विज्ञापन में देखा जा सकता है। आजकल तो 'इण्टरनेशनल' विद्यालयों की बाढ़-सी आ गई है। ऐसे विद्यालय उन्हीं चीज़ों को महत्वपूर्ण बताते हैं जो विद्यार्थी के अपने परिवेश में नहीं हैं, यथा — विद्यालय का अंग्रेज़ी माध्यम में होना, वाहन का होना, ए.सी. का होना आदि। इस दृष्टि से विद्यालय की प्रतिष्ठा का मानदंड इस बात से तय होता है कि वह विद्यार्थी को उसके परिवेश से कितना दूर ले जाने की संभावना रखता है? बाज़ार ने समाज और विद्यालय के बीच की दीवार को और भी ऊँचा किया है। इसी बाज़ार की उपज 'इण्टरनेशनल' स्कूलों ने तो उन खिड़कियों को भी बंद कर दिया है जिनसे कभी-कभार समाज विद्यालय में और विद्यालय समाज को झाँक आया करता था। बाज़ार के प्रभाव में विद्यालयों ने अपने भागीदारों, शिक्षक और शिक्षार्थी को, ज्ञानमार्गी बना दिया है, लेकिन यहाँ ज्ञान, जिज्ञासा को बनाए रखने और सीखने की ललक जगाए रखने के लिए नहीं है, बल्कि वह तटस्थ, निरपेक्ष और सार्वभौमिक है। ज्ञान के 'अंतिम सत्य' के माध्यम से वे सभी सुविधाओं को इकट्ठा कर लेना चाहते हैं जो समाज में उनका आभामंडल बनाने में मदद करे। इस ज्ञान मार्ग द्वारा विद्यालय सरल कार्य को जटिल बना देता है (कुमार, 2004)। वह सरलता और स्वाभाविकता के बदले शब्द-जाल द्वारा एक माया की रचना करता है। माना कि बौद्धिक

चिंतन और उत्कर्ष के लिए ज्ञानानुशासन और शोध में जटिलता होनी चाहिए। लेकिन इस 'जटिलता' की भूमिका एक दुनिया को दूसरी दुनिया से अलग करने की नहीं है, बल्कि एक दृष्टि प्रदान करने की है जिससे आप अपनी दुनिया को जान सकें और दूसरे को उसकी दुनिया को जानने में सहयोग कर सकें। यह तभी संभव है, जब शिक्षा और विद्यालय को अपेक्षाओं के बोझ से मुक्त किया जाए। ये अपेक्षाएँ जो बाज़ार के प्रभाव में समाज में उपजती हैं और जो समाज और विद्यालय के बीच की दीवार को मज़बूत करती हैं, इन्होंने शिक्षा के अर्थ और लक्ष्य को बदल दिया है।

शिक्षा से जुड़े सवालों पर विचार करते हुए प्रायः पहला प्रश्न होता है कि शिक्षा क्या है? इस सवाल का मुकम्मल उत्तर दे पाना मुश्किल काम है। अकसर हम कुछ शिक्षाशास्त्रियों के विचारों, शिक्षा के उद्देश्यों या शिक्षा की प्रासंगिकता के आधार पर ऐसे सवालों का उत्तर देते हैं। इस प्रश्न को एक भिन्न दृष्टि से संबोधित करते हैं — शिक्षा क्या 'नहीं' है? इस रास्ते पर बढ़ना एक क्रान्तिकारी और अराजकतावादी कदम हो सकता है। वैसे भी आजकल शिक्षा जगत में 'विद्यालय भंग करो' (इलिच, 1971) और 'विद्यालय मर चुके हैं' (राइमर, 1971) जैसे नारे चल पड़े हैं। इस दिशा में आगे बढ़ें तो पहला विचार आता है कि शिक्षा विद्यालय में दिया जाने वाला विषय ज्ञान, अनुशासन और प्रतियोगिता की अभिवृत्ति नहीं है। शिक्षा एक बड़े फलक की प्रक्रिया है जो जिज्ञासु बाल-मन और मस्तिष्क के विचार और कर्म को परिष्कृत करती है।

यहाँ 'परिष्करण' महत्वपूर्ण शब्द है। इसे कुम्हार, माटी और मटके के उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। कुम्हार, वे लोग हैं जो तय करते हैं कि किसे परिष्कृत मानेंगे और किसे अपरिष्कृत। ऐसे कुम्हार दोहरे लक्ष्य लेकर चलते हैं। पहला, जो चलन में है, उसमें फिट करने के लिए परिष्करण करते हैं। दूसरा, जो होना चाहिए, उसकी परिकल्पना के अनुसार नई रचना करते हैं। इस तरह के कुम्हार (अध्यापक और समुदाय के सदस्य) द्वारा निर्मित मटके (विद्यार्थी) में नूतनता और मौलिकता की संभावना न्यूनतम होती जा रही है। नई रचना के बदले चलन को स्वीकारने और उसमें फिट करने की परिपाटी को प्रोत्साहित किया जा रहा है। अंकों के आधार पर प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी में विभाजन और हर विद्यार्थी को इस विभाजन के अनुसार योग्य से अयोग्य के क्रम में व्यवस्थित करना, इसका उदाहरण मात्र है। ऐसी ही स्थिति में अभिभावक भी परीक्षा की तैयारी और सफलता को सब कुछ मान लेते हैं। अंततः शिक्षा अनुभवों की पुनर्रचना जैसे व्यापक उद्देश्यों के बदले प्राप्तांकों के उत्पाद पर समाप्त होती है। इस उत्पाद के आधार पर ही हम बच्चे के बारे में भविष्य कथन करते रहते हैं। इस चलन के पक्ष में शिक्षक और अभिभावकों की सहमति का एकमात्र तर्क होता है कि शिक्षा, समय और संदर्भ पर अवलंबित होती है। समय की माँग के प्रतिकूल जाकर हम अपने बच्चों के भविष्य को दांव पर नहीं लगा सकते हैं। यानी कि जो शिक्षा हमारे बच्चों को दी जा रही है, उसकी सीमाओं से हम परिचित हैं, लेकिन सुरक्षित भविष्य के आश्वासन का दबाव इन सीमाओं का विकल्प न

खोजने को मजबूर कर रहा है। जब समाज के आइने में सुरक्षित भविष्य और शिक्षा की परछाई देखते हैं तो ऐसा समाज नज़र आता है जो अति व्यक्तिवादी है, जो भौतिक पदार्थों के संग्रह में व्यस्त है, जो कला और संगीत की सुविधा को दोयम दर्जे पर रखता है, जो हर रोज़ 'टारगेट' के साथ उठता और जगता है। इन परिस्थितियों में अकसर एक वैचारिक उद्वेलन पैदा होता है। यह उद्वेलन शिक्षा द्वारा ऐसा परिष्करण करना चाहता है कि मानव में मानवता रहे। मानवता की इस परिभाषा को एक अग्रलिखित उदाहरण द्वारा समझिए — मेरी एक विद्यार्थी ने बताया कि उनके पति अकसर अपने बेटे से सवाल पूछते हैं कि क्या तुम चरवाहा बनोगे? क्या तुम किसान बनोगे? क्या तुम गाँव में रहोगे? हर सवाल के बाद वे इन भूमिकाओं के महत्व पर प्रकाश डालते हैं। इस तरह वे वर्तमान शिक्षा की अति-भौतिकतावादी और आर्थिक दृष्टि की आलोचना करते हैं। वे चाहते हैं कि उनका बच्चा प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं, जैसे — खेती आदि के महत्व को भी समझे। निश्चित रूप से वे परिकल्पित करते हैं कि शिक्षा के माध्यम से पढ़े-लिखे और बिना पढ़े-लिखे के बीच का भेद समाप्त होना चाहिए। इस तरह के भेद पैदा करने वाली व्यवस्था न तो शिक्षा हो सकती है और न ही मानव-निर्माण कर सकती है।

समाज के यथार्थ और आदर्श के बीच शिक्षा को एक फंदा बना दिया गया है जो देश, राजनीति और अर्थव्यवस्था जैसी इकाइयों से बच्चे को जोड़ने का कार्य करती है। यह फंदा उत्पादक हो सकता

है, लेकिन है तो बाध्यकारी। इस बंधन की जकड़ ने दो परस्पर विरोधाभासी कार्य किए हैं। पहला, हमारी देखने की दृष्टि को सीमित कर दिया है और दूसरा इस सीमित दृष्टि को 'ज्ञानवान' होने के रूप में स्थापित कर दिया है। ऐसे सीमित दृष्टि वाले ज्ञानवान का ठीक-ठीक भावानुवाद 'कूप-मण्डूप' होना है। इसका सृजनात्मकता और स्वतंत्र चिंतन से कोई लेना-देना नहीं है। ऐसी शिक्षा एक उपयोगी पदार्थ या वस्तु मात्र है जो केवल व्यक्ति की उपयोगिता और उसके मूल्य को बढ़ाती है, लेकिन मानव-निर्माण करने में असफल रहती है। शिक्षा मन, वचन और कर्म में 'स्वराज' लाती है। वह इतनी आत्मशक्ति देती है कि आप अच्छे-बुरे, करणीय-अकरणीय, पथ-विपथ का भेद कर सकें और बिना परिणाम की चिंता किए सच्चाई के साथ खड़े हो सकें। अंग्रेज़ी में एक शब्द है — 'कम्प्रोमाइज़'। शिक्षा 'कम्प्रोमाइज़' का प्रतिकार है — शिक्षा वह है, जो आपको इतना सबल प्रदान करे कि आप क्षणिक और तात्कालिक लाभ से ऊपर उठकर विचार कर पाने की स्थिति में हों; शिक्षा आपको धर्म, जाति, पंथ और राष्ट्र की भीरुता से मुक्त करे; शिक्षा आपके व्यवहार में विनम्रता का प्रवाह करे; शिक्षा आपकी अकड़ और ठसक को तिरोहित करे; शिक्षा आपको दुनियादारी के भय से निर्भय करे तथा शिक्षा वह है कि हमारे प्रत्येक विद्यार्थी अच्छे मानव बनें। अतः ऐसी शिक्षा के चरितार्थ होने पर ही यथास्थिति को बदलने का हौसला रखने वाले जिज्ञासु, सक्रिय और स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व का निर्माण हो पाएगा।

संदर्भ

- इलिच, आई. 1971. *डिस्कूलिंग सोसाइटी*. हार्पर एंड रॉ, न्यू यॉर्क.
- कुमार, के. 2004. *वॉट इज वोर्थ टीचिंग*. ओरियंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली.
- क्लार्क, पी. 2001. *टीचिंग एंड लर्निंग — दि कल्चर ऑफ़ पेडागोजी*. सेज, नयी दिल्ली.
- बीस्ता, जी. 2014. वॉट इज एजुकेशन फॉर. *यूरोपियन जर्नल ऑफ़ एजुकेशन*. 50(1). पृ. 75–88.
- यंग, एम. 2007. वॉट आर स्कूल फॉर एजुकाको सोसाईडाडे एंड कल्चर्स. 32. पृ. 145–155.
- राइमर, ई. 1971. *स्कूल इज डेड — अल्टर्नेटिव्स इन एजुकेशन*. पेंग्विन, न्यू यॉर्क.

ज्ञान के सृजन हेतु शिक्षण

सुनील कुमार गौड़*

इस लेख में बताया गया है कि भारत के संविधान में उल्लिखित नागरिकों के मूल कर्तव्य, शिक्षा के लक्ष्य और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या हमारी शिक्षा को स्पष्ट दिशा देते हैं। इन्हीं दिशानिर्देशों के आधार पर यह अपेक्षा की जाती है कि विद्यालय ज्ञानार्जन के ऐसे केंद्र बनें, जहाँ सतत नवीन ज्ञान का सृजन हो, परंतु वर्तमान यंत्रवत शिक्षा प्रणाली में अभी और महत्वपूर्ण कार्य करने की आवश्यकता है। इन महत्वपूर्ण कार्यों में यह हो सकता है कि विद्यालयों में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाए। साथ ही विद्यार्थियों को पढ़ाई, सूचना पर आधारित पढ़ाई, गतिविधि आधारित पुस्तकें, अनुभवजन्य अधिगम आदि घटकों का महत्व बताते हुए शिक्षण-अधिगम कर ज्ञान सृजन हेतु अभिप्रेरित करना इस लेख की प्रमुख विषय-वस्तु है। इस लेख में आप सृजनशील शिक्षक से जुड़ी अपेक्षाओं एवं शिक्षण व्यवहार के बारे में भी विस्तृत रूप से पढ़ेंगे।

शिक्षा के उद्देश्यों में ‘ज्ञान के सृजन’ का स्थान
“शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों में अंतर्निहित ऐसी क्षमताओं का विकास करना है जिसके द्वारा वे स्वयं में ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों का विकास करके जीवन के अर्थ को समझ सकें।” शिक्षा के उद्देश्य अत्यन्त व्यापक हैं, इनमें ‘ज्ञान के सृजन’ का महत्व सर्वोपरि है। ज्ञान का सृजन करना शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में सम्मिलित है। शिक्षण अनुभव से ज्ञात हुआ है कि वर्तमान में स्कूली शिक्षा एक यंत्रवत प्रणाली बनकर रह गई है, जिससे शिक्षण में ‘ज्ञान के सृजन’ की प्रक्रिया लुप्त हो गई है। अतएव, यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षण-अधिगम

कराया जाए। इससे विद्यार्थी जीवन का अर्थ समझ सकेंगे तथा उनमें लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना हो सकेगी।

हमारे मूल कर्तव्य

जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान ही सार्थक है। ‘ज्ञान के सृजन’ के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा में महत्वपूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। ‘ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षा’ विद्यार्थियों को सृजनात्मकता की ओर ले जाती है। इसके लिए शिक्षा के संपूर्ण तंत्र पर चिन्तन करने की आवश्यकता है। भारत के संविधान की उद्देशिका में बहुत ही भव्य और उदात्त शब्दों का उपयोग किया गया है, जो उच्चतम मूल्यों को साकार करते हैं। शिक्षा एक मूल्यपरक उद्यम

है। 'ज्ञान के सृजन' की प्रक्रिया के द्वारा विद्यार्थियों में मूल्यों का निर्माण होता है। इससे उनमें सत्य का अन्वेषण करने तथा तार्किक चिन्तन का विकास होता है। भारत के संविधान में 'नागरिकों के मूल कर्तव्य' भाग 4क, अनुच्छेद 51क में वर्णित किए गए हैं। मूल कर्तव्य 51क (ज) में उल्लिखित है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह — "वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करो।" संविधान में प्रत्येक भारतीय नागरिक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास पर बल दिया गया है। इसमें वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा 'ज्ञान का सृजन' किए जाने की बात छिपी है। ज्ञान के सृजन की वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषता यह है कि इससे स्वतः ही जीवन मूल्यों का विकास होता है।

भारत का संविधान प्रत्येक नागरिक के मूल कर्तव्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास पर बल देता है, जिससे वह वैज्ञानिक पद्धति से 'ज्ञान का सृजन' कर सके। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षा के द्वारा बालकों का चहुँमुखी विकास करने के लिए 'ज्ञान के सृजन' पर पर्याप्त बल दिया जाए। इससे कक्षा में लोकतान्त्रिक वातावरण बनेगा और ऐसे नागरिकों का निर्माण होगा जो अपने जीवन में स्वविवेक से निर्णय लेकर आगे बढ़ेंगे।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में 'ज्ञान के सृजन' का स्थान

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में पाठ्यचर्या निर्माण के पाँच निर्देशक सिद्धान्त उल्लिखित हैं, जो 'ज्ञान' एवं 'ज्ञान के सृजन' को पर्याप्त महत्व देते हैं।

ये निर्देशक सिद्धान्त इस प्रकार हैं —

1. ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना।
2. पढ़ाई रटन्त प्रणाली से मुक्त हो, यह सुनिश्चित करना।
3. पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्द्धन करना कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया कराए, बजाय इसके कि वह पाठ्यपुस्तक-केन्द्रित बनकर रह जाए।
4. परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना।
5. एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातान्त्रिक राज्य-व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय चिन्ताएँ समाहित हों। (एन.सी.एफ. 2005, पृ. 5)

शिक्षा के लक्ष्य, भारत के संविधान में वर्णित नागरिकों के मूल कर्तव्य एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के आलोक में उद्देश्यों की संप्राप्ति हेतु विद्यालयों में 'पढ़ाई' संचालित है।

'पढ़ाई' शब्द का मतलब

'पढ़ाई' शब्द समाज में बहुत प्रचलित है। हम सामान्यतः बच्चों से कहते रहते हैं कि 'पढ़ लो!' बच्चे भी कहते हैं, "मैं पढ़ाई कर रहा हूँ।" शिक्षक कहते हैं, "मैं बच्चों को पढ़ा रहा हूँ।" यह शब्द अपने आप में बहुत सतही है जो कि कक्षा में सूचना आधारित शिक्षण का द्योतक है। यह 'पढ़ाई' शब्द उचित नहीं है, क्योंकि इसमें 'स्वयं क्रियाकलाप करके सीखने' के अवसर नहीं होते। इस शब्द का सीधा आशय पुस्तकों में दी गई सूचनाओं को पढ़ना है। शिक्षक भी पुस्तकों में लिखी गई सूचना को बच्चों

को समझा देते हैं। बच्चे रटकर या समझकर याद कर लेते हैं और परीक्षा में लिखकर अच्छे अंक भी ले आते हैं। यह तरीका ठीक नहीं है। लेखक के अनुसार ‘ज्ञानार्जन’ और ‘ज्ञान के सृजन’ की प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में ‘पढ़ाई’ शब्द के स्थान पर शिक्षक द्वारा यह कहने की आवश्यकता है कि “मैं शिक्षण कर रहा हूँ” अर्थात्, “बच्चों की ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में भागीदारी कर रहा हूँ”, क्योंकि इस प्रक्रिया में शिक्षक सुगमकर्ता के रूप में कार्य करते हैं। “बच्चे सीख रहे हैं”, अर्थात् “अधिगम या ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में संलग्न हैं।”

सूचना पर आधारित ‘पढ़ाई’

वैसे तो यह माना जाता है कि पाठ्यपुस्तकें शिक्षण का एक माध्यम हैं, परन्तु विद्यालयों में अधिकतर इन्हीं के द्वारा शिक्षण किया जाता है। सामान्यतः पाठ्यपुस्तकें ही शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के लिए प्रमुख उपकरण का कार्य कर रही हैं। पाठ्यपुस्तकों में लिखी गई पाठ्य-सामग्री को शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को समझा देना या बता देना ‘सूचना’ ही है, जिसे विद्यार्थी याद कर लेते हैं, रट लेते हैं और परीक्षा में लिखकर उच्च प्रतिशत अंक प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ ‘ज्ञान के सृजन’ का कोई स्थान नहीं है, सब कुछ ‘सूचना’ के आदान-प्रदान पर आधारित है। आज के समय में ‘सूचना’ तथा ‘ज्ञान’ को फिर से अलग-अलग समझने की आवश्यकता है।

अधिगम या सीखना

यह एक निरन्तर चलने वाली सार्वभौमिक प्रक्रिया है। सीखने के फलस्वरूप व्यक्ति अपने व्यवहार में परिष्कार करता है। वास्तव में, शिक्षा का महत्वपूर्ण

कार्य सीखना और सिखाना ही है। वुडवर्थ के अनुसार, “नवीन ज्ञान का सृजन करने की प्रक्रिया ही अधिगम है।” विभिन्न प्रकार के अनुभवों के संगठन को भी अधिगम कहते हैं। अधिगम कोई ‘परिणाम’ न होकर ‘प्रक्रिया’ है। स्वयं करके सीखना, निरीक्षण करके सीखना, परीक्षण करके सीखना, अनुसरण करके सीखना, प्रयास और त्रुटि द्वारा सीखना आदि, अधिगम की कुछ प्रमुख विधियाँ हैं। इनका उपयोग कक्षा-कक्ष में ज्ञान का सृजन करने हेतु किया जाना आवश्यक है।

अनुभवजन्य अधिगम

कक्षा में विद्यार्थियों को ‘स्वयं करके सीखने के अवसर’ अधिक-से-अधिक उपलब्ध कराने होंगे, जिससे ‘अनुभवजन्य अधिगम’ की प्रक्रिया गतिमान होगी एवं ‘ज्ञान का सृजन’ होगा। इसी प्रक्रिया में ‘नवीन ज्ञान का सृजन’ भी होगा। वैसे भी दैनिक जीवन में देखा जाता है कि स्वयं प्राप्त किए गए अनुभव ही महत्वपूर्ण होते हैं। व्यक्ति स्वयं के अनुभवों से ही सीखता है। इससे सीखे गए ज्ञान का दैनिक जीवन में उपयोग करने की संभावना बढ़ती है अर्थात् अधिगम का स्थानान्तरण होता है। अनुभवजन्य सीखने से विद्यार्थियों को सीधे अनुभव प्राप्त होते हैं तथा वे अनुभवों का सामान्यीकरण करते हैं। अनुभवों का सामान्यीकरण ज्ञान के सृजन का प्रमुख चरण है। इससे नवीन अनुभव जुड़ते जाते हैं और फिर विद्यार्थी नवीन अनुभवों का परीक्षण करते हैं। कक्षा में लोकतान्त्रिक वातावरण देकर ‘स्वयं करके सीखने के अवसर’ उपलब्ध कराने चाहिए।

तालिका 1

क्र.सं.	ज्ञान के सृजन की प्रक्रिया के चरण	विधियाँ
1.	विद्यार्थियों द्वारा स्वयं करके सीखने के प्रत्यक्ष अनुभव	प्रयोग एवं अभ्यास
2.	अनुभवों का सामान्यीकरण	समूह चर्चा, समूह अवलोकन, फीडबैक
3.	नवीन अनुभवों का परीक्षण	परियोजना कार्य, क्रियात्मक शोध, केस अध्ययन
4.	ज्ञान का सृजन	करके सीखना
5.	नवीन ज्ञान का सृजन	प्रत्यक्ष अनुभव
6.	नवीन ज्ञान का दैनिक व्यवहार में प्रदर्शन	व्यवहारगत प्रदर्शन

ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षण विधियाँ
 ‘नवीन ज्ञान के सृजन’ हेतु किसी विषय के प्रकरण के अनुरूप बाल-केन्द्रित शिक्षण-अधिगम की अनुसंधान विधि, परियोजना विधि, समस्या-समाधान विधि तथा आगमन विधि को अपनाना होगा। शिक्षण-अधिगम की इन विधियों के द्वारा विद्यार्थी स्वयं ‘ज्ञान का निर्माण’ करते हैं और उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है। (गौड़, सुनील कुमार; 2015)

विद्यार्थी कक्षा में प्रश्न करें तथा ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में संलग्न रहें, शिक्षण हेतु इसके विविध तरीके भी बताने की आवश्यकता है। क्रियाकलाप या प्रयोग के द्वारा सीखना, ज्ञानार्जन करने की प्रमुख विधि है। बच्चों के द्वारा प्रयोग या गतिविधि कराना शिक्षण-अधिगम की प्रमुख सीढ़ी है। पाठ्यपुस्तकों के आधार पर शिक्षण-अधिगम कराने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थी पाठ्यपुस्तक की सहायता से किसी क्रियाकलाप को चरणबद्ध रूप से करें और ज्ञान का सृजन एवं अधिगम करें। यहाँ यह विशेष सावधानी रखनी आवश्यक है कि क्रियाकलाप या प्रयोग करने से पूर्व विद्यार्थियों को क्रियाकलाप का

परिणाम नहीं बताया जाए। परिणाम की खोज वे स्वयं करेंगे, यदि विद्यार्थियों को क्रियाकलाप का परिणाम पहले ही बता दिया गया तो क्रियाकलाप होगा ही नहीं। यदि होगा, तो केवल खानापूर्ति ही होगी, यह ज्ञान का सृजन नहीं है। ज्ञान के सृजन में आगमन एवं निगमन तथा संश्लेषण एवं विश्लेषण विधियों का भी उपयोग किया जाता है।

शिक्षा को रटन्त प्रणाली से मुक्त रखने के लिए ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षण किया जाना आवश्यक है, क्योंकि सूचना को विद्यार्थी रट लेते हैं। विद्यार्थी द्वारा स्वयं रचित ज्ञान अर्थात् वास्तविक ज्ञान को रटने की आवश्यकता नहीं होती।

‘पाठ्यपुस्तक पठन विधि’

शिक्षण की अनेक विधियाँ हैं, जिन्हें शिक्षक विषयगत व्याख्या में प्रकरण के अनुकूल पाते हुए शिक्षण हेतु अपनाते हैं। कभी-कभी यह भी देखने को मिलता है कि शिक्षक विद्यार्थी से ही कहते हैं, “किताब निकालो और खड़े होकर पाठ पढ़ो।” विद्यार्थी पाठ पढ़ना शुरू कर देता है, अचानक शिक्षक विद्यार्थी को आदेश देते हैं, “रुको! अब आगे दूसरा विद्यार्थी पढ़ेगा।”

विचार कीजिए, यह कैसी शिक्षण विधि है? इसे तो 'पढ़ाई' ही कहा जाएगा, क्योंकि इसमें विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक स्तर के अनुरूप क्रियाकलापों के द्वारा अधिगम नहीं होता है। ज्ञानार्जन तथा ज्ञान के सृजन के लिए संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं मनोगत्यात्मक पक्षों का समन्वय होना भी आवश्यक है। कभी-कभी शिक्षक विद्यार्थियों को पठन कौशल एवं अभ्यास में वृद्धि करने के लिए इस विधि का उपयोग कर लेते हैं। परन्तु, जहाँ तक हो सके, इससे बचना चाहिए, क्योंकि इस विधि में बच्चे पुस्तक में लिखी गई बातों को बिना समझे शब्द रट लेते हैं, इसमें न शिक्षण है, न अधिगम, और न ही यह ज्ञानार्जन की प्रक्रिया है। यह स्थिति तब और भी दयनीय हो जाती है, जब विज्ञान, भूगोल जैसे प्रयोग आधारित विषयों में भी 'पढ़ने' की इस विधि का उपयोग किया जाता है।

वर्तमान 'सूचना' प्रधान शिक्षण

यदि हम विद्यालयी शिक्षा में शिक्षण के स्वरूप को देखें, तो लेखक के अनुभव के आधार पर वर्तमान में सामान्यतः सूचना प्रधान रूप में ही शिक्षण संचालित है। शिक्षक पूर्व सृजित ज्ञान को बिना जाँचे-परखे विद्यार्थियों को बता देते हैं। विद्यार्थी इसे रट लेते हैं और परीक्षा में लिखकर अंक प्राप्त कर लेते हैं। ऐसी परिस्थिति में ज्ञान के सृजन की संभावना ही नहीं है। जहाँ भी शिक्षण में पूर्व सृजित ज्ञान के प्रयोग अथवा निर्धारित प्रक्रिया द्वारा परीक्षण किया जाता है, वहाँ पूर्व सृजित ज्ञान की पुष्टि तो होती है अर्थात् ज्ञान का सृजन भी होता है, परन्तु नवीन ज्ञान का सृजन नहीं हो पाता। इस प्रकार, शिक्षण में

नवीन ज्ञान के सृजन की मात्रा बहुत कम है। विज्ञान, भूगोल, भाषा-साहित्य जैसे विषयों में भी नवीन ज्ञान के सृजन की मात्रा कम है, क्योंकि विद्यार्थी बिना प्रयोग एवं पुष्टिकरण के ही विषयों को पढ़ रहे हैं। उदाहरणार्थ, साहित्य में ही, यदि बच्चे नई-नई कविताएँ, कहानियाँ, नाटक आदि लिखें, सृजन करें, तो यही ज्ञान का सृजन है। हमें विद्यार्थियों को इसकी प्रक्रिया आत्मसात करानी पड़ेगी तथा इस प्रक्रिया का नियमित अभ्यास कराना होगा।

गतिविधि आधारित पाठ्यपुस्तकें

वर्तमान में विद्यालयी शिक्षा में गतिविधि या प्रयोगात्मक कार्य पर आधारित पाठ्यपुस्तकें संचालित हैं, जिनके द्वारा सैद्धान्तिक विषय-वस्तु का शिक्षण प्रयोगात्मक कार्य के साथ-साथ किया जाना आवश्यक है। विद्यालयी शैक्षिक अवलोकन के अनुभव से लेखक को ज्ञात हुआ है कि अधिकांश शिक्षक तथा विद्यार्थी इन पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से कक्षा में गतिविधि एवं प्रयोगात्मक कार्य नहीं कर रहे हैं। बड़ी कक्षाओं में प्रयोगात्मक कार्य पृथक से किया जा रहा है जिससे विद्यार्थी सैद्धान्तिक तथा प्रयोगात्मक कार्य का तालमेल नहीं कर पा रहे हैं। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी समग्रता से 'ज्ञानार्जन और ज्ञान का सृजन' नहीं कर रहे हैं। गतिविधि आधारित पाठ्यपुस्तकों को सूचना के आदान-प्रदान के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है। यह 'ज्ञान आधारित शिक्षण' और 'अधिगम' अर्थात् 'सीखना' और 'सिखाना' नहीं है। इसे सामान्य भाषा में 'पढ़ाई' ही कहा जाएगा।

बदलते परिप्रेक्ष्य में ज्ञान की रचना हेतु शिक्षक की भूमिका

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, एक वास्तविक शिक्षक वह है जो विद्यार्थियों के स्तर पर आकर, उन्हें समझाने का प्रयास करता है और अपनी आत्मा का स्थानान्तरण उनमें करता है। ऐसे ही शिक्षक वास्तव में विद्यार्थियों को अच्छे संस्कार दे सकते हैं। शिक्षक 'ज्ञान के निर्माण' की प्रक्रिया में विद्यार्थियों के साथ भागीदारी निभाएँ एवं कक्षा में ज्ञान सृजन के लिए लोकतान्त्रिक वातावरण का निर्माण करें। विद्यार्थियों की विभिन्नताओं और विशेषताओं का आदर करें। यह भली-भाँति समझना होगा कि प्रत्येक विद्यार्थी में कोई-न-कोई क्षमता अवश्य होती है। विद्यार्थियों के द्वारा किए गए कार्यों की प्रशंसा करनी होगी। उन्हें अपने कार्य के प्रदर्शन हेतु उचित मंच देना होगा जिससे वे अपने कार्य को उच्च स्तर पर ले जा सकें और अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करने की दिशा में आगे बढ़ सकें।

ज्ञान के सृजन हेतु विद्यार्थी उत्कृष्ट चिंतन कैसे करें?

विद्यार्थियों को यह सिखाना होगा कि वे ज्ञान के सृजन हेतु उत्कृष्ट चिंतन कैसे करें और सकारात्मक कैसे सोचें? इसके लिए विद्यार्थियों को कक्षा में लोकतान्त्रिक वातावरण देना होगा। हो सकता है कि कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों की बैठक व्यवस्था में परिवर्तन करना पड़े, जिससे विद्यार्थी आपस में संवाद कायम कर सकें। कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी को यह अहसास कराना होगा कि वह स्वयं में क्षमतावान है।

विद्यार्थी ज्ञान के सृजन की प्रक्रिया आत्मसात् करें तथा उसकी आदत डालें। सकारात्मक सोचें और सीखने का उपयुक्त वातावरण बनाएँ। अपने ज्ञान को उचित मंच पर प्रदर्शित करें। सृजित ज्ञान को उच्च स्तर पर ले जाएँ और अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करने की दिशा में प्रयास करें। ऐसे कार्य विद्यार्थियों को नवीन ज्ञान के सृजन हेतु उत्कृष्ट चिंतन के लिए दिशा प्रदान करेंगे।

कक्षा में विद्यार्थी — 'फूलों का गुलदस्ता'

कक्षा 'विद्यार्थियों का गुलदस्ता' है। जिस प्रकार बगीचे में विभिन्न प्रकार के फूलों की अपनी विभिन्नताएँ तथा विशेषताएँ होती हैं, उसी प्रकार कक्षा में विद्यार्थियों की भी अपनी विभिन्नताएँ और विशेषताएँ होती हैं। कक्षा में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक परिप्रेक्ष्य के विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी में सीखने की अपनी क्षमता एवं गति होती है। कोई विद्यार्थी धीरे सीखता है, तो कोई शीघ्र सीखता है। धीरे सीखने वालों में भी अन्य विशेष क्षमताएँ होती हैं। वे किसी विषय को धीरे सीखते हैं, तो किसी को शीघ्र सीखते हैं। एक प्रबुद्ध शिक्षक को विद्यार्थियों की विभिन्नताओं और क्षमताओं को समझने एवं उनसे स्नेहपूर्ण व्यवहार करने की आवश्यकता है। चाहे उसमें किसी प्रकार की दिव्यांगता ही क्यों न हो। दिव्यांग में भी कोई-न-कोई विशेषता और क्षमता अवश्य होगी। विद्यार्थी की क्षमता और विशेषता की पहचान करने की आवश्यकता है। दिव्यांग भी बहुत उम्दा कार्य करते हैं, ऐसे अनेक

प्रमाण हमारे सम्मुख हैं। सभी विद्यार्थियों की भावनाओं का सम्मान करें। ऐसा करके ही कक्षा में 'ज्ञान के निर्माण' की प्रक्रिया का संचालन होगा। शिक्षक को कक्षा में विद्यार्थियों के लिए सीखने का उचित वातावरण देने तथा सीखने में सहयोग करने की आवश्यकता है। विविधतापूर्ण कक्षा में शिक्षण के दौरान ज्ञानार्जन के साथ नवीन ज्ञान का सृजन भी होता है।

विद्यार्थियों द्वारा ज्ञानार्जन की प्रक्रिया के दौरान कक्षा में प्रश्न पूछना

ज्ञान विद्यार्थियों के भीतर निहित होता है। प्रश्नोत्तर के द्वारा इसे उजागर किया जाता है। इसलिए विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने के लिए लगातार प्रोत्साहित करते रहना आवश्यक है। लेखक का शिक्षण अनुभव बताता है कि जब विद्यार्थी क्रियाकलाप करते हुए ज्ञान का सृजन कर रहे होते हैं, तो वे प्रश्न करते हैं। प्रश्न पूछना शिक्षण और अधिगम का स्वस्थ मार्ग है। विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने तथा शिक्षकों की सहायता से उनका समाधान ढूँढ़ने की दिशा में कार्य करना बेहतर आदत होगी।

'ज्ञान के सृजन' की प्रक्रिया में आने वाले प्रश्न, जिनमें 'क्या', 'क्यों', 'कैसे' प्रश्नवाचक शब्द हों, उनके द्वारा क्रमशः पाठ्य-सामग्री, कारण, प्रक्रिया की बात छिपी रहती है। शिक्षण में इनके द्वारा नवीन 'ज्ञान का सृजन' होता है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन के विकास की प्राप्ति का सुगम मार्ग हो सकता है।

तालिका 2

क्र.सं.	प्रश्नवाचक शब्द	शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया	उत्पाद
1.	'क्या'	पाठ्य-सामग्री	ज्ञान का निर्माण
2.	'क्यों'	कारण	
3.	'कैसे'	प्रक्रिया	

कक्षा का लोकतांत्रिक वातावरण

कल्पना करें ऐसी कक्षा की जिसमें खुले वातावरण में शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया गतिमान हो; बच्चे आपस में बातचीत एवं समूह में 'स्वयं कार्य करके ज्ञान का सृजन' कर रहे हों अर्थात् सीखना गतिमान हो; शिक्षक विद्यार्थियों के ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में भागीदार बन रहे हों; बच्चे प्रश्न-दर-प्रश्न पूछ रहे हों; कक्षा में प्रश्नों और समस्याओं का समाधान चल रहा हो; इस तरह की कोई भी कक्षा सजीव एवं लोकतांत्रिक कक्षा ही होगी, जिसमें सभी को सीखने के समान अवसर मिल रहे होंगे। कक्षा में सीखने के ऐसे लोकतांत्रिक वातावरण की ही आवश्यकता है। लेखक के शिक्षण के अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि सामान्यतः बच्चे जब तक प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ रहे होते हैं, तब तक वे कक्षा में अपने बाल स्वभाव का प्रदर्शन करते हैं तथा कक्षा में लोकतांत्रिक वातावरण बना रहता है, परंतु जब वे इंटर कॉलेज की बड़ी कक्षाओं (कक्षा 6 और उससे आगे की कक्षाओं) में पढ़ रहे होते हैं तो कक्षा का वातावरण मशीनवत हो जाता है, क्योंकि वहाँ अधिकतर व्याख्यान विधि के द्वारा 'पढ़ाई' होती है। व्याख्यान विधि भी ऐसी जिसमें

विद्यार्थी मात्र श्रोता के रूप में शिक्षक द्वारा दी गई सूचनात्मक बातों को सुन रहे होते हैं। प्रश्न करने एवं चर्चा-परिचर्चा करने के अवसर भी कम ही मिलते हैं। कभी मिलते भी हैं, तो कक्षा के एक-दो विद्यार्थी ही प्रश्न करते हैं, शेष विद्यार्थी संकोचवश चुपचाप ही बैठे रहते हैं।

कक्षा-कक्ष के भौतिक वातावरण में परिवर्तन की आवश्यकता

कक्षा-कक्ष के भौतिक वातावरण में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। ऐसी बैठक व्यवस्था किस काम की जिसमें विद्यार्थी एक-दूसरे की पीठ देख रहे हों? ज्ञान सृजन की प्रक्रिया के दौरान ऐसी बैठक व्यवस्था में विद्यार्थी आपस में चर्चा-परिचर्चा कैसे करेंगे? एक प्रबुद्ध शिक्षक को कक्षा के बच्चों के आयु वर्ग तथा उनके मनोविज्ञान के अनुसार कक्षा-कक्ष के भौतिक वातावरण का निर्माण और साज-सज्जा करनी आवश्यक है। ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थियों को बैठक व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, तो ऐसी स्थिति में फ़र्नीचर ऐसा हो जिसे सुविधानुसार प्रयुक्त किया जा सके। सीखने और गतिविधि करने के लिए बड़ी कक्षाओं में कभी-कभी दरी भी उपयुक्त रहती है।

शिक्षण के स्वरूप एवं प्रक्रिया पर चिन्तन और आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता

लेखक को विद्यालयी शैक्षिक अवलोकन के अनुभव, प्रशिक्षणोपरांत फ़ॉलोअप और फ़ीडबैक से ज्ञात हुआ है कि विद्यालयों में संचालित शिक्षण-अधिगम में गुणवत्ता हेतु पूर्ण रूप से वांछित

बदलाव नहीं आ सका है। अभी भी अधिकतर विद्यालयों में परंपरागत पद्धति एवं व्याख्यान विधि द्वारा पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित शिक्षण संचालित है। ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षण करने के लिए सम्पूर्ण शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में बदलाव लाना होगा। अब इस बात की आवश्यकता है कि सभी विद्यालयों में ऐसे वांछित बदलाव परिलक्षित हों। इस प्रकार 'ज्ञान के सृजन हेतु शिक्षण' आधारभूत परिवर्तन की माँग करता है।

विषयों के शिक्षण का माध्यम 'कला' तथा संप्रेषण का एक माध्यम 'भाषाएँ'

नवीनतम शोध के निष्कर्ष, सीखने का मनोविज्ञान, मानव मस्तिष्क की संरचना एवं कार्यविधि के द्वारा ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक विद्यार्थी में सीखने की अलग-अलग गति तथा तारतम्यता होती है। विद्यार्थी अलग-अलग तरीकों से सीखते हैं। विद्यालयी पाठ्यचर्या में विषयों के शिक्षण-अधिगम के अन्तर्गत 'ज्ञान के सृजन' की प्रक्रिया में प्रदर्शन कला, दृश्य कला, हलका शारीरिक व्यायाम तथा योग की महत्वपूर्ण भूमिका है। ये ही वास्तव में शिक्षण का माध्यम हैं। ये 'स्वयं करके सीखने' तथा 'ज्ञान के सृजन' का माध्यम भी हैं। हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाएँ, संप्रेषण का एक माध्यम हैं। शिक्षण के माध्यम के रूप में इनका उपयोग करने से विद्यार्थी कठिन विषयों में भी सुगमतापूर्वक ज्ञान का सृजन करते हैं। हमें शिक्षण पद्धतियों में इस प्रकार की नवीनता लाने की आवश्यकता है। ऐसे उपाय करके 'ज्ञान आधारित शिक्षण पद्धति' का विकास किया जा सकता है।

विद्यालयी शिक्षा में ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षण-अधिगम हेतु किए गए कार्य

विद्यालयों में संचालित कक्षा 1 से कक्षा 12 तक की पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन तथा सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के आलोक में ज्ञान के सृजन हेतु शिक्षण-अधिगम किए जाने के लिए पाठ्यपुस्तकों विकसित की गई हैं। एन.सी.ई.आर.टी., एस.सी.ई.आर.टी. उत्तराखंड, राजस्थान राज्य पुस्तक मण्डल, मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र आदि की पाठ्यपुस्तकें गतिविधि आधारित हैं। ये पाठ्यपुस्तकें पाठ्यक्रम की सैद्धान्तिक संकल्पनाओं को प्रयोगात्मक कार्य के द्वारा तथा आगमनात्मक विधि पर आधारित शिक्षण-अधिगम किए जाने के दर्शन पर विकसित की गई हैं।

सेवा-पूर्व शिक्षक शिक्षा में ऐसा बदलाव लाने के लिए 'शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' (एन.सी.एफ.टी.ई.), 2009 के आलोक में देश के अनेक राज्यों में डी.ई.एल.एड. (प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा) एवं द्विवर्षीय बी.एड. की पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया है। इसका निर्माण 'ज्ञान के सृजन पर आधारित शिक्षण' करने के लिए किया गया है। सेवारत शिक्षक शिक्षा हेतु उत्तराखंड में प्रशिक्षण पैकेज — 'मंथन', 'मंथन 2', 'अर्जन' आदि का निर्माण करके कैसकैड मॉडल में शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया है। परन्तु, अभी इस दिशा में कक्षा-कक्ष स्तर पर और अधिक व्यावहारिक कार्य करने आवश्यक हैं।

शिक्षक शिक्षा की पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम में नवीनता हेतु बदलाव

सेवा-पूर्व तथा सेवारत शिक्षक शिक्षा एवं प्रशिक्षण में 'ज्ञान के सृजन हेतु शिक्षण' के उपर्युक्त संपूर्ण उपागम पर बल दिया जाना चाहिए। बी.एड., एम.एड. तथा एम.ए. शिक्षाशास्त्र की पाठ्यचर्या में भी इसे सम्मिलित किया जाना आवश्यक है, जिससे भावी शिक्षक इन्हें कक्षा-कक्ष व्यवहार में अपना सकें। इसके लिए विश्वविद्यालयी स्तर पर संचालित एम.ए. शिक्षाशास्त्र, बी.एड. एवं एम.एड. की पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम में इस प्रकार के महत्वपूर्ण बदलाव करने की आवश्यकता है। इन्हें कार्य रूप में परिणति करने के लिए शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाना होगा। इस सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में जब नई पीढ़ी के शिक्षक कक्षा-कक्ष व्यवहार में परिवर्तन लाएँगे, तभी विद्यालयों में 'ज्ञान के सृजन के लिए शिक्षण पर आधारित गुणवत्तापूर्ण शिक्षा' हेतु सफलता मिलेगी।

निष्कर्ष

विद्यार्थियों के अनुभव, उनकी जिज्ञासाएँ तथा विभिन्नताएँ, अवलोकन क्षमता आदि का सीखने की प्रक्रिया में पूर्णतम उपयोग, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का मुख्य आधार हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के प्रभाव में आने के पश्चात् कक्षा शिक्षण की परिस्थितियों में बदलाव आया है। जागरूक शिक्षकों ने कक्षा की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में बदलाव किया है, परन्तु अभी इस दिशा में और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है। शिक्षण में अभी भी ज्ञान के बजाय सूचना को महत्व दिया जा रहा

है, क्योंकि ज्ञान आधारित शिक्षण-अधिगम किए जाने की प्रक्रिया को शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम में पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है। ज्ञान के सृजन को आगमन, निगमन, संश्लेषण, विश्लेषण, क्या, क्यों, कैसे, किन्तु, परन्तु आदि प्रक्रिया आधारित सक्रिय शिक्षण विधियों के रूप में समझें। विद्यार्थी को ज्ञानार्जन करने वाला समझने के साथ ही उसे ज्ञान का सृजनकर्ता भी समझना आवश्यक है।

मूल्य और कौशल आपस में ज्ञान से अंतर्संबंधित हैं। ज्ञानार्जन तथा ज्ञान के सृजन की प्रक्रिया में विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न प्रकार के कौशल प्रयुक्त किए जाते हैं, जिससे मूल्यों का निर्माण स्वतः होता है। विद्यार्थी नवीन अनुभव तथा परिवर्तनों को शीघ्रता से स्वीकार कर लेते हैं। स्कूल नहीं जाने वाला बच्चा भी विद्यालय से बाहर अपने दैनिक अनुभव तथा परिस्थितियों में ज्ञान अर्जित करता है। विद्यालय में विद्यार्थी शिक्षकों के निर्देशन में, निर्धारित प्रक्रिया के अंतर्गत ज्ञानार्जन करते हैं। प्रबुद्ध सृजनशील शिक्षक आकलन के नवीन तरीकों और अवलोकन द्वारा सुनिश्चित कर लेते

हैं कि विद्यार्थी ज्ञानार्जन कर रहे हैं अथवा नहीं। यह कार्य वे ज्ञानार्जन की प्रक्रिया के साथ-साथ करते हैं।

ज्ञान गतिशील एवं सतत विकासशील है, यह एकदिशीय नहीं है। इस संदर्भ में हम बच्चों से यह उम्मीद करते हैं कि वे चिंतनशील एवं विकासशील बनें। बच्चे ज्ञानार्जन की प्रक्रिया का पालन करके नवीन ज्ञान का सृजन भी करें। 'सृजनवाद' ज्ञानार्जन पर आधारित ज्ञान का सृजन करने की प्रक्रिया है। 'ज्ञान के सृजन' के परिप्रेक्ष्य में एक चिंतनशील एवं विकासशील शिक्षक अपने तौर-तरीकों से विद्यार्थियों को निरन्तर ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न रखता है। ऐसे सृजनशील शिक्षकों के लिए स्कूली ढाँचे का उनके अनुकूल होना या नहीं होना, कोई मायने नहीं रखता। 'ज्ञान के सृजन' पर आधारित शिक्षण करने के लिए अतिरिक्त प्रयास करने पड़ते हैं। साथ ही सतत एवं व्यापक आकलन भी करना होता है। अतः 'ज्ञान के सृजन हेतु शिक्षण' के लिए सुझाए गए उक्त परिवर्तनों को स्वीकार करके शिक्षकों को अपने शिक्षण व्यवहार में परिवर्तन लाना समय की माँग है।

संदर्भ

- उपाध्याय हरिशंकर. 1996. *ज्ञानमीमांसा के मूल प्रश्न*. पेनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली.
- उत्तराखंड विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान केन्द्र. 2016. *सहज-सरल-सुगम शिक्षण*. देहरादून, उत्तराखंड.
- गौड़, सुनील कुमार. 2015. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विज्ञान सीखने-सिखाने की प्रभावी विधाएँ. *ज्ञान-विज्ञान शैक्षिक निबंध*. होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ फ़ंडामेंटल रिसर्च, मुम्बई. (4). पृ. 104-114.
- . 2015. शिक्षा में गुणवत्ता विकास के लिए शोध अध्ययनों की उपादेयता. *परिप्रेक्ष्य*. राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा), नयी दिल्ली. (22) 3, पृ. 109-116
- मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र. 2016. *प्रारम्भिक शिक्षा हेतु पाठ्यपुस्तकें*. मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र, भोपाल.
- एकलव्य . 2002. *बाल वैज्ञानिक*. एकलव्य, भोपाल, मध्य प्रदेश.

- राजस्थान राज्य पुस्तक मण्डल. 2016. *प्रारम्भिक शिक्षा हेतु पाठ्यपुस्तकें*. राजस्थान राज्य पुस्तक मण्डल, जयपुर.
- राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्. 2014. *प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा (डी.ईएल.एड.) हेतु पाठ्यचर्या*. एस.सी.ई.आर.टी., देहरादून, उत्तराखंड.
- . 2017. कक्षा 1 से 12 हेतु प्रमुख विषयों की पाठ्यपुस्तकें. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- . 2017. *प्रारम्भिक शिक्षा हेतु पाठ्यपुस्तकें*. राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, देहरादून, उत्तराखंड.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्. 2009. *शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2009*. एन.सी.टी.ई., नयी दिल्ली.
- सुभाष कश्यप. 2013. *हमारा संविधान*. नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नयी दिल्ली.
- सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण मॉड्यूल. 2014–2016. *मंथन, मंथन 2 एवं अर्जन*. एस.सी.ई.आर.टी., उत्तराखंड एवं राज्य परियोजना कार्यालय, एस.एस.ए., देहरादून, उत्तराखंड.

ग्रामीण समाज और अंतर्राष्ट्रीय स्कूल में आधुनिक शिक्षा

मनीष*

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, सामाजिक परिवर्तन इस परिवर्तन का हिस्सा है। आज, पूरे भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया बढ़ रही है। यह भी माना जाता है कि 2040 तक देश की आधी आबादी शहरीकरण के अंतर्गत आ जाएगी। शिक्षा क्षेत्र भी सामाजिक परिवर्तन से प्रभावित हो रहा है। नए शहरीकृत या 'रुर्बन' क्षेत्रों में 'अंतर्राष्ट्रीय स्कूल' बड़े स्तर पर खुल रहे हैं। ये स्कूल दावा करते हैं कि वे 'आधुनिक' शिक्षा प्रदान करते हैं। माता-पिता भी अपने बच्चों को इन स्कूलों में भेजने में रुचि रखते हैं। लेकिन इस बात को अनदेखा किया जा रहा है कि बच्चों को दो अलग-अलग दुनिया में रहना पड़ रहा है (यानी उनका स्वयं का सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन और स्कूल का जीवन)। यह अध्ययन ग्रामीण बच्चों की अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया को समझने के लिए किया गया है, जहाँ बच्चा घर पर और स्कूल में, दो अलग-अलग जीवन जी रहा है। इस शोध में यह परखने का प्रयास किया गया कि बच्चा आधुनिकता के मूल्यों को कैसे समझता है। इसके परिणाम उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया पर आधारित हैं। शोधक द्वारा विकसित साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग करके बच्चों के विचार एकत्र किए गए थे। अध्ययन के नतीजे बताते हैं कि स्कूल और बच्चे के सामाजिक अनुभवों के बीच एक विरोधाभास है, जो आधुनिकता से जुड़े मूल्यों और बच्चे के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के बीच संभावित तनाव के संदर्भ में बच्चे की अस्मिता के संकट का कारण बनता है। यह भी पाया गया कि 'अंतर्राष्ट्रीय स्कूल' इस तरह के विरोधाभास में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

प्रस्तावना

समाज गतिशील है, जिसमें परिवर्तन अवश्यभावी है। यदि हम समाज में सामंजस्य और निरंतरता को बनाए रखना चाहते हैं तो हमें यथास्थिति अपने व्यवहार को परिवर्तनशील बनाना ही होगा। यदि ऐसा न होता तो मानव समाज की इतनी प्रगति संभव नहीं होती। निश्चित और निरंतर परिवर्तन मानव समाज की विशेषता है। शहरीकरण इस सामाजिक परिवर्तन का ज़रिया है। भारत में शहरी भारत की विकास दर

ग्रामीण भारत की विकास दर से वास्तविक अर्थों में ज्यादा है। सन् 2001-2011 के दशक में शहरी भारत ने अपनी आबादी में 9.1 करोड़ लोगों को जोड़ा, जबकि ग्रामीण भारत ने उसी अवधि में 9 करोड़ लोगों को जोड़ा। भारत में शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र हो, जहाँ शहरीकरण की प्रक्रिया शुरू न हुई हो। शिक्षा समाज का एक पक्ष है। शिक्षा और समाज एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव शिक्षा पर आसानी से देखा जा सकता है।

आज भारत में निजी विद्यालयों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। इन्हीं में 'इंटरनेशनल' या 'ग्लोबल' या 'वर्ल्ड' स्कूल कहे जाने वाले विद्यालय विभिन्न क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। स्वयं को आधुनिक और प्रगतिशील कहने वाले ये विद्यालय गाँव के बच्चों (जो इन विद्यालयों में पढ़ते हैं) के सीखने की प्रक्रिया, उनकी अस्मिता, सामाजिकता और आधुनिकता के विचारों को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं, यह जानना इस शोध का विषय था। ऐसे 'अंतर्राष्ट्रीय' विद्यालय सही मायनों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर के विद्यालय नहीं हैं, बल्कि ये केवल व्यापारिक विद्यालय हैं, जो सिर्फ नाम का दोहन करके अधिक फ़ीस लेना या एक पूरी आवासीय व्यवस्था चलाकर अपने व्यवसाय को बनाए हुए हैं। विभिन्न क्षेत्रों के नवधनिक वर्ग के इन विद्यालयों के नाम आकर्षित होते हैं, क्योंकि 'अंतर्राष्ट्रीय' या 'ग्लोबल' का अर्थ ही उन्हें पश्चिमी देशों की शिक्षा एवं संस्कृति के करीब ले जाता है।

इस शोध का औचित्य यही है कि इन दो दुनिया (एक बच्चे का परिवेश, दूसरा वह 'अंतर्राष्ट्रीय विद्यालय') में रह रहे बच्चों की अस्मिता निर्माण और उनकी शिक्षा का आधुनिकता के नज़रिए से अध्ययन करना। इस विषय में शोधक की रुचि तब जाग्रत हुई, जब मैंने अपने आस-पास ऐसे बच्चों को देखा, जो गाँव में तो रहते हैं, लेकिन उनकी औपचारिक शिक्षा गाँव से इतर एक अलग शहरी परिवेश में 'इंटरनेशनल' कहलाए जाने वाले निजी विद्यालयों में हो रही है। हाल के दिनों में शोधक के गाँव (पश्चिमी दिल्ली के हिरनकूदना

गाँव) में ज़मीन बिकने से कुछ लोगों की आर्थिक स्थिति में बहुत बदलाव आया है, जिसके चलते उन्होंने अपने बच्चों को इन निजी और महंगे विद्यालयों में पढ़ाना शुरू कर दिया है। इसके कारण उनका समाजीकरण एक ऐसे परिवेश में हो रहा है, जो न तो पूर्ण रूप से शहरी है और न ही ग्रामीण। ऐसे में ये बच्चे गाँव और शहर के बीच की परिधि पर खड़े हैं, जहाँ एक साथ दो परिवेश उनके साथ चलते हुए दिखाई देते हैं। मेरे भी कुछ ऐसे निजी अनुभव रहे हैं, जो इस विषय में मेरी रुचि को बढ़ाते हैं।

चूँकि इस प्रकार के विद्यालय बच्चों को आधुनिक बनाने का और उन्हें प्रगतिशील शिक्षा मुहैया कराने का दावा करते हैं। इसलिए हमारे लिए यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि हम भारत के सन्दर्भ में आधुनिकता के अर्थ को समझें। भारत में अपनाई जाने वाली आधुनिकता को छद्म आधुनिकता कहते हैं। भारत में लोग पश्चिमीकरण को आधुनिकीकरण मान बैठे हैं। आधुनिकता के आधार लक्षणों, जैसे — विवेकपूर्ण तर्क, परानुभूति, भूमिकाओं की सचलता और सक्रियता आदि को लोगों ने नहीं अपनाया। इस कारण भारतीय लोगों की जीवन शैली तो बदली है परन्तु उनकी विचार शैली नहीं बदली। भारतीय लोग सांस्कृतिक औपनिवेशिक बन रहे हैं और बौद्धिक दासता को स्वीकार कर रहे हैं (दुबे, 1985)।

इस शोध के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए आधुनिक होने के कुछ ही लक्षणों और बिन्दुओं को आधार बनाया गया है जिन्हें निम्न परिभाषाओं से समझा जा सकता है —

‘आधुनिकता’ का मतलब यह समझ में आता है कि इसके समक्ष सीमित-संकीर्ण-स्थानीय दृष्टिकोण कमजोर पड़ जाता है और सार्वभौमिक प्रतिबद्धता और विश्वजनीन दृष्टिकोण (यानी कि समूचे विश्व का नागरिक होना) ज्यादा प्रभावशाली होता है; इसमें उपयोगिता, गणना और विज्ञान की सत्यता को भावुकता, धार्मिक पवित्रता और अवैज्ञानिक तत्त्वों के स्थान पर महत्व दिया जाता है; इसके प्रभाव में सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर व्यक्ति को प्राथमिकता दी जाती है, न कि समूह को। इसके मूल्यों के मुताबिक मनुष्य ऐसे समूह/संगठन में रहते और काम करते हैं जिनका चयन जन्म के आधार पर होता है। इसमें भाग्यवादी प्रवृत्ति के ऊपर ज्ञान तथा नियन्त्रण क्षमता को प्राथमिकता दी जाती है और यही मनुष्य को उसके भौतिक तथा मानवीय पर्यावरण से जोड़ता है; इसे अपनी पहचान को चुनकर अर्जित किया जाता है न कि जन्म के आधार पर; इसका मतलब यह भी है कि कार्य को परिवार, गृह और समुदाय से अलग कर नौकरशाही संगठन में शामिल किया जाता है... (रुडोल्फ और रुडोल्फ, 1967)।

गुप्ता (2008) आधुनिकता की चार विशेषताओं का उल्लेख करते हैं —

- व्यक्ति की गरिमा।
- सार्वभौमिक आदर्शों को अपनाना।
- बिना किसी भेदभाव के व्यक्ति की क्षमता के आधार पर उन्नति।
- सार्वजनिक जीवन में उतरदायित्व।

शोध के उद्देश्य

इस शोध के उद्देश्य इस प्रकार हैं —

1. ग्रामीण बच्चों की अस्मिता, व्यक्तित्व और शिक्षा पर औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के प्रभावों को समझना।
2. बदलते समाज में ग्रामीण बच्चों की अस्मिता निर्माण की प्रक्रिया को समझना।
3. ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए आधुनिक शिक्षा के मायनों को समझना।
4. ग्रामीण बच्चों की अस्मिता निर्माण में ‘अंतर्राष्ट्रीय विद्यालयों’ की भूमिका को समझना।

शोध-प्रविधि

गुणात्मक शोध होने के कारण इसमें वर्णात्मक एवं विश्लेषणात्मक अनुसंधान पद्धति का प्रयोग किया गया। शोध के लिए पश्चिमी दिल्ली के हिरनकूदना गाँव को चुना गया। यह क्षेत्र तेज़ी से बदल रहा है और शहर में परावर्तित हो रहा है। यह गाँव लगभग 250 वर्ष पुराना है (स्थानीय लोगों की जानकारी के अनुसार)। इस गाँव की जनसंख्या 5000 के करीब है। इस गाँव में जाट, नाई, खाती, लुहार, मुस्लिम जाट, सुनार, कुम्हार, ब्राह्मण आदि जातियाँ निवास करती हैं। यह गाँव राष्ट्रीय राजमार्ग 10 से लगभग 02 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। मुंडका मेट्रो स्टेशन से गाँव की दूरी 4.6 कि.मी. है। इस गाँव के ग्रामीण होने का प्रमाण यह है कि यहाँ के ग्रामीणों को सरकार द्वारा ग्रामीण निवासी का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता है। क्षेत्र के अधिकतम लोग कृषि पर आश्रित हैं। सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यहाँ

के लोगों ने अपने संस्कारों और रीति-रिवाजों को आज भी बनाकर रखा हुआ है। गुप्ता (2015) ऐसे क्षेत्रों को 'रुर्बन' के वर्ग में शामिल करते हैं।

शोधक को साक्षात्कार के लिए ऐसे दो बच्चों का चयन करना था, जो शोध के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक हों। बच्चों का चयन उनकी उम्र, उनके सामाजिक परिवेश और उनके विद्यालय को ध्यान में रखकर किया गया। ये बच्चे 13 या 14 वर्ष के थे और 'इंटरनेशनल स्कूल' में पढ़ते थे। दोनों ही बच्चे नौवीं कक्षा में पढ़ते थे। विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त यह मानते हैं कि इस उम्र में बच्चे अपनी अस्मिता का निर्माण करते हैं। इस शोध में अस्मिता का अर्थ बहुत ही सीमित रखा गया, जिसमें इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयत्न किया गया है कि "मैं कौन हूँ?" ये बच्चे गाँव में ही रहते हैं और प्रतिदिन विद्यालय आते-जाते हैं। दोनों जगहों का परिवेश एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत है। शोध के लिए केवल दो ही बच्चों का चयन किया गया, क्योंकि एम.एड. के दौरान शोध की समयावधि बहुत ही सीमित होती है।

गंगा इंटरनेशनल स्कूल हिरनकूदना गाँव में ही स्थित है। यह स्कूल इस गाँव में एकमात्र निजी स्कूल है और इस क्षेत्र का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध स्कूल है। स्कूल का दावा है कि वह एक आधुनिक, प्रगतिशील और बाल-केन्द्रित स्कूल है। स्कूल में हॉस्टल के साथ-साथ वे सभी सुविधाएँ मौजूद हैं जो किसी भी स्कूल को एक आधुनिक या बड़ा स्कूल बनाती हैं, जैसे — प्रत्येक खेल के लिए अलग

मैदान, एक विशाल इमारत, प्रशिक्षित अध्यापक और अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाई। पश्चिम दिल्ली में स्थित यह स्कूल यहाँ के बच्चों को उनके घर और समाज से बिल्कुल अलग माहौल प्रदान करता है। इसीलिए शोधक ने इस स्कूल के छात्रों को साक्षात्कार के लिए चुना। इस शोध में अध्ययन के लिए आँकड़ों का संकलन व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर किया गया। आँकड़े प्राप्त करने के लिए शोधक द्वारा पहले एक साक्षात्कार अनुसूची बनाई गई। विभिन्न विषय क्षेत्रों के बारे में बच्चों से उनके विचार जानने के लिए अलग-अलग साक्षात्कार किया गया। उन साक्षात्कारों और उनके विचारों को ऑडियो रिकॉर्डर की सहायता से रिकॉर्ड किया गया और साक्षात्कार पूरा होने के पश्चात् शोधक द्वारा उनका अभिलेखन कर सारांश तैयार किया गया। प्राप्त आँकड़ों का सारणीकरण कर विभिन्न विषय बिन्दुओं के आधार पर उनका विश्लेषण एवं विवेचन कर परिणाम प्राप्त किए गए।

विश्लेषण एवं विवेचन

शोधक द्वारा पहले चुने हुए बिन्दुओं और आधुनिकता के अपेक्षित मूल्यों की एक तालिका प्रस्तुत की गई है जिसका उद्देश्य यह दिखाना है कि क्या दोनों बच्चे इन मूल्यों को अपने मानसिक जगत में शामिल कर पाए हैं या नहीं? साहित्य समीक्षा से प्राप्त आधुनिकता के मूल्यों और सीमित समय के कारण शोधक ने कुछ ही बिन्दुओं को विश्लेषण के लिए चुना है।

तालिका 1 — चुने हुए बिंदु एवं आधुनिकता के अपेक्षित मूल्यों पर बच्चों का मत

चुने हुए बिंदु	आधुनिकता के अपेक्षित मूल्य	दीपक*	सुरेश*
जाति	समता	X	X
लिंग-भाव	समता और सम्मान	X	X
महत्वाकांक्षी	स्वीकार्य	✓	✓
श्रम विभाजन	समता और सम्मान	X	X
तार्किकता	स्वीकार्य	X	X
आलोचनात्मक तर्क	स्वीकार्य	X	X
पारम्परिक मूल्य	अस्वीकार्य	X	X
जन्माधारित कार्य	अस्वीकार्य	✓	✓
मिथक, लोककथाएँ	अस्वीकार्य	X	X

*काल्पनिक नाम

तालिका 1 में 'X' उन बिंदुओं की ओर संकेत करता है जिन्हें बच्चा आधुनिकता के अपेक्षित मूल्य के तौर पर अपने जीवन और मानसिक जगत में शामिल नहीं कर पाया है और '✓' उन मूल्यों को दर्शाता है जिन्हें बच्चा अपने जीवन में स्वीकार कर चुका है। तालिका 1 से स्पष्ट है कि आधुनिकता के अपेक्षित मूल्य, जिन्हें बच्चों ने स्वीकार किया, बहुत ही कम हैं, जबकि उन मूल्यों की संख्या अधिक है जिन्हें ये बच्चे अस्वीकार करते हैं। तालिका 1 के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि इन बच्चों के मानसिक जगत में एक द्वंद्व है जो इन्हें आधुनिकता के सही मायनों से परे ले जा रहा है।

तालिका 2 में उन बिन्दुओं को इंगित किया गया है जिन पर दोनों बच्चे एक समान सोचते हैं, मामूली अंतर से सोचते हैं या बिलकुल असमान विचार रखते हैं। इसका उद्देश्य यह समझना है कि एक विशेष प्रकार का विद्यालय उन बच्चों के सामाजिक और

पृष्ठभूमि से जुड़े अंतरों को प्रभावित कर पाता है या नहीं। इन बच्चों के मानसिक जगत के अंतरों को स्पष्ट करने वाली तालिका 2 इस प्रकार है —

तालिका 2 — चुने हुए बिन्दुओं पर बच्चों के मत

चुने हुए बिंदु	समान	मामूली अंतर	असमान
जाति	✓		
भाषा		✓	
परिवार	✓		
परम्परा	✓		
आदतें			✓
पसंद या नापसंद			✓
आदर्श		✓	
तकनीक		✓	
लिंग-भाव	✓		
श्रम विभाजन	✓		
लक्ष्य			✓
ग्रामत्व		✓	
आधुनिकता		✓	
मित्रता			✓
विज्ञान			✓
मिथक, लोककथाएँ	✓		

तालिका 2 इस बात को स्पष्ट करती है कि ये दोनों बच्चे उन मुद्दों पर समान विचार रखते हैं जो उनके परिवार, संस्कृति और प्राथमिक सामाजीकरण से जुड़े हुए हैं। जिन बिन्दुओं पर ये अलग-अलग सोचते हैं, उन बिन्दुओं पर स्कूल का प्रभाव देखा जा सकता है। कुछ बुनियादी अवधारणाओं, जैसे — जाति, लिंग-भाव, परिवार, श्रम विभाजन आदि पर स्कूल कोई खास प्रभाव नहीं डाल सका है।

परिवार

भारतीय समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण संस्था है और बच्चे परिवार में ही अपना आदर्श ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं (कक्कड़, 1978)। दीपक एकल परिवार और सुरेश संयुक्त परिवार में रहता है, लेकिन दोनों की पसंद संयुक्त परिवार है। दीपक का मानना है कि संयुक्त परिवार में हँसी-मज़ाक से समय बीत जाता है और काम का बँटवारा होने से आसानी होती है। सुरेश कहता है कि संयुक्त परिवार में दादा-दादी की सेवा करने का मौका मिलता है। दीपक अपने चाचाजी के लड़के से अत्यंत प्रभावित है और उसी जैसा बनना चाहता है। दूसरी ओर सुरेश अपने पिताजी से काफ़ी प्रभावित है।

जब समाज शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया से गुज़रता है तो स्वाभाविक तौर पर संयुक्त परिवार की अवधारणा ढीली पड़ने लगती है (दुबे, 1985)। तेज़ी से बदलते गाँव की एक विशेषता एकल परिवार भी है। लेकिन इस शोध में पाया गया कि ये बच्चे संयुक्त परिवार की चाह रखते हैं और इतना ही नहीं, वे अपने बड़े-बुजुर्गों में अपने आदर्श ढूँढ़ते हैं। परिवार बच्चों के विचारों को काफ़ी हद तक प्रभावित करता है और छोटे-से-छोटे निर्णय लेने के लिए बच्चों को अपने परिवार पर निर्भर रहना पड़ता है। हालाँकि इस अंतर्राष्ट्रीय स्कूल में हॉस्टल की सुविधा है, परन्तु ये बच्चे अपने घर से ही स्कूल जाते हैं। स्कूल जाने के साथ-साथ ये बच्चे अपने परिवार से अलग नहीं हुए हैं। कृष्ण कुमार (1999) भी अपने एक लेख में इस बात को स्वीकार करते हैं कि परिवार बच्चों के लक्ष्यों, उनकी आदतों और

अपेक्षाओं को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है (सरस्वती, 1999)।

पारंपरिक मूल्य

सुरेश और दीपक, दोनों ही अपने पारंपरिक विश्वासों और मान्यताओं में आस्था रखते हैं। एक प्रश्न के उत्तर में दीपक ने कहा कि, मैं भगवान राम के जैसा बनना चाहूँगा, क्योंकि वे अपने माता-पिता की बात मानते थे और उसी सवाल के जवाब में सुरेश का उत्तर हनुमान था, क्योंकि वे सच्चे सेवक और स्वामीभक्त थे। दोनों ही इन मूल्यों को अपने जीवन में शामिल करना चाहते हैं। दोनों ही बच्चों के आदर्श धर्म से जुड़े हुए हैं और एक मिथक से आए हैं। इससे पता चलता है कि एक 'अंतर्राष्ट्रीय' कहे जाने वाले स्कूल में पढ़ने के बावजूद उन बच्चों पर धार्मिक आस्था और मान्यताओं का प्रभाव बना हुआ है।

वे बिना प्रश्न किए उन विश्वासों को स्वीकार करते हैं। कई दस्तावेज़ों, नीतियों (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005) में इस बात को स्वीकार किया गया कि आधुनिक शिक्षा का एक उद्देश्य बच्चों में आलोचनात्मक सोच और प्रश्न करने की क्षमता विकसित करना है, परन्तु इन बच्चों का साक्षात्कार इस बात की ओर संकेत करता है कि ये अंतर्राष्ट्रीय स्कूल (जो ऐसे उद्देश्यों को साथ लेकर चलने का दावा करते हैं) भी इन उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। अपने बड़ों की बातों को मानना और बिना प्रश्न किए उन्हें अपने जीवन में उतार लेना, भारतीय ग्रामीण समाज की एक विशेषता रही है (श्रीनिवास, 1967)। उन बच्चों के इस विश्वास में घर-परिवार के संस्कार और उनका प्रभाव बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इस मूल्य को बच्चों में बनाए रखने में परिवार, समाज, स्कूल आदि के अलावा कुछ ऐसी संस्थाएँ भी सहायक हैं, जो उनसे प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई नहीं हैं। इसमें राजनीतिक गतिविधियाँ और मीडिया शामिल है। बच्चे अकसर टेलीविजन पर ऐसे कार्यक्रम देखते हैं, जो इन मूल्यों को पुष्ट करते हैं और उनकी मानसिकता पर एक गहरा प्रभाव भी छोड़ते हैं।

तकनीक

दोनों बच्चे तकनीक और उससे जुड़ी सुविधाओं को जीवन के लिए ज़रूरी मानते हैं। जहाँ तक विज्ञान के महत्व का प्रश्न है तो दीपक का मानना है कि विज्ञान हमारे जीवन को आसान बनाता है और हमारे भविष्य को बेहतर बना सकता है। सुरेश कहता है कि विज्ञान हमें सुविधाएँ प्रदान करता है और हमें चीज़ों के होने का कारण भी बताता है। लेकिन दोनों का यह भी मानना है कि विज्ञान से मिले मोबाइल और कंप्यूटर हमें अपने परिवार से अलग भी करते हैं। ये बच्चे तकनीक को एक बाधा के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं कि बच्चे अपना ज़्यादा समय कंप्यूटर और मोबाइल पर बिताते हैं और अपने परिवार को कम समय दे पाते हैं। दोनों का मानना है कि बच्चों को एक निश्चित उम्र के बाद ही कंप्यूटर और मोबाइल देना चाहिए। बच्चे इन उपकरणों का दुरुपयोग भी करते हैं। यह गंभीर विषय है कि एक तरफ़ तो ये बच्चे तकनीक से जुड़ना चाहते हैं और दूसरी ओर इसके प्रयोग से पारिवारिक संबंधों में आ रहे परिवर्तन को भी स्वीकार नहीं करना चाहते। यह एक अंतर्विरोध है,

जो गाँव में रहने वाले बच्चों में ही मिलेगा, शहर में रहने वाले बच्चों में ऐसा द्वंद्व शायद ही देखने को मिले।

आज के समय में कंप्यूटर एवं इंटरनेट बच्चों की पढ़ाई के लिए बहुत आवश्यक माना जाने लगा है और इस बात की पुष्टि कई दस्तावेज़ करते हैं तथा ऐसे अंतर्राष्ट्रीय स्कूल भी तकनीक और इंटरनेट जैसी सुविधाओं पर ज़ोर देते हैं। गाँव में अपनी अस्मिता का निर्माण कर रहे बच्चों में ये परिवर्तन एक विरोधाभास उत्पन्न कर रहे हैं। जैसा कि जॉनसन (2005) और श्रीनिवास (2000) कहते हैं कि भारत में लोग आधुनिकता को कुछ हद तक ही स्वीकार करते हैं। ऐसे ही कुछ विरोधाभास तकनीक और आधुनिकता को लेकर इन बच्चों में दिखाई देते हैं। ये बच्चे मशीनों के प्रयोग को आवश्यक मानते हैं, परंतु इनके कारण मूल्यों में आए परिवर्तन उन्हें स्वीकार्य नहीं हैं, जैसे — साक्षात्कार में शोधार्थी ने एक प्रश्न में दोनों बच्चों से ऐसा उदाहरण बताने के लिए कहा, जहाँ उन्होंने तकनीक के कारण परिवार में कोई परिवर्तन देखा हो। इसके जवाब में दीपक ने बताया कि उसके पड़ोस में एक लड़का है, जो कंप्यूटर पर काफ़ी समय बिताता है। इसी वजह से वह न तो घर का कोई काम कर पाता है और न ही घरवालों के साथ समय बिता पाता है। इससे पता चलता है कि ये बच्चे इन बदलावों और उनके प्रभावों को अपने जीवन और आस-पास के समाज में न केवल देखते हैं, बल्कि उन्हें अपने जीवन में शामिल भी कर रहे हैं। इससे यह तो

स्पष्ट है कि वे मशीन और तकनीक को इस प्रकार प्रयोग करने में विश्वास करते हैं कि उनसे उनके सामाजिक और आपसी सम्बन्ध किसी प्रकार प्रभावित न हो सकें। यह एक बड़ा अंतर्विरोध है जिसे गाँव के बच्चे अपने साथ लेकर चल रहे हैं, जो उन्हें आज के समय में तो प्रभावित कर ही रहा है, साथ ही भविष्य में भी उनके लिए बाधा उत्पन्न कर सकता है।

लैंगिक विचारधारा

दीपक के अनुसार लड़कियों को घर से बाहर नहीं जाना चाहिए। वह अपने चाचाजी के लड़के से इसीलिए प्रभावित है, क्योंकि उसकी सोच उसके दादाजी और पिताजी जैसी ही है। दीपक का यही मानना है कि लड़कियों को ज्यादा छूट नहीं देनी चाहिए। सुरेश की सोच भी दीपक से कुछ ज्यादा अलग नहीं है। उसके अनुसार भी लड़कियों के कुछ निश्चित क्षेत्र हैं, जिनसे उन्हें बाहर नहीं जाना चाहिए। सामाजिक स्थान या घर से बाहर जाने से लड़कियों को रोकना चाहिए। भारतीय समाज लड़कियों को घर और परिवार की इज्जत से जोड़कर देखता है। उन पर कुछ विशेष नियम लागू होते हैं (दुबे, 2004)। इसके अलावा सुरेश का कहना है कि बाहर जाना लड़कियों के लिए सुरक्षित नहीं है। समाज में कुछ ऐसे तत्व हैं जिनसे लड़कियों को खतरा रहता है। दीपक का कहना है कि लड़कियों को अपने घर वालों की हर बात मान लेनी चाहिए। दीपक लड़कियों का किसी बारात में जाना भी गलत मानता है। दीपक और सुरेश, दोनों ही किसी लड़की को अपना दोस्त नहीं बनाना चाहते। उनके

अनुसार लड़कों को लड़कियों से दोस्ती नहीं करनी चाहिए।

एक अन्य प्रश्न में दीपक ने कहा कि वह अपनी माँ और बहन को उपहार में सूट देना चाहेगा। अपने पिताजी को फोटो फ्रेम और भाई को एयर मैक्स के जूते। इसी प्रश्न के जवाब में सुरेश ने पिताजी को मिठाई और माँ को कॉस्मेटिक का सामान देने की इच्छा व्यक्त की। वह बहन को चॉकलेट देना चाहता है। इन विचारों से साफ़ है कि महिलाओं के लिए कुछ निश्चित सामान ही हैं जो उन्हें दिए जा सकते हैं। जबकि भाई और पिता के लिए ज्यादा विकल्प होते हैं जिनमें उनकी पसंद और ज़रूरत, दोनों का ध्यान रखा जाता है।

लगभग हर शिक्षा संबंधी दस्तावेज़ (कोठारी आयोग, 1964-66; *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*) इस बात को स्वीकार करता है कि लड़कियों के साथ हो रहे भेदभाव को समाप्त करना ज़रूरी है। लैंगिक आधार पर समानता आधुनिकता की एक महत्वपूर्ण अवधारणा भी है, जोकि इन बच्चों के विचारों से विपरीत है। जोधका (2012) ने अपने शोध में पाया कि 20 साल पहले भी सामाजिक स्थानों पर औरतों का जाना निषेध था और 20 साल बाद भी स्थिति वैसी ही है। दीपक और सुरेश भी लड़कियों के बारे में वही विचार रखते हैं, जोकि समाज में पहले से चले आ रहे हैं। ये 'इंटरनेशनल' कहे जाने वाले स्कूल बच्चों के इन विचारों को प्रभावित नहीं कर पा रहे हैं और ना ही उनमें ऐसी सोच विकसित कर पा रहे हैं जिससे वे

अपने परिवार के लोगों से इन पारम्परिक विचारों पर प्रश्न कर सकें।

श्रम विभाजन

एक प्रश्न के ज़रिये शोधक ने यह जानने का प्रयत्न किया कि श्रम के बँटवारे को लेकर दोनों बच्चों के क्या विचार हैं? दीपक और सुरेश दोनों का मानना है कि पहले से कुछ कार्य-क्षेत्र लड़कियों के लिए निश्चित हैं और उन्हें उस दायरे से बाहर काम नहीं करना चाहिए। वे कहते हैं कि लड़कियों को घर के बाहर के काम नहीं करने चाहिए। उन्हें घर के अंदर के काम, जैसे — साफ़-सफ़ाई, खाना बनाना और पढ़ाई ही करनी चाहिए। घर के बाहर के काम लड़कों को ही करने चाहिए। लड़कियों को खेल भी ऐसे खेलने चाहिए जो घर के अन्दर ही खेले जा सकें।

एक अन्य प्रश्न जिसमें प्रक्षेपण विधि का प्रयोग कर उन बच्चों से जानने का प्रयत्न किया गया कि श्रम विभाजन को लेकर उनकी विचारधारा क्या है? दीपक ने कहा कि अगर उसे बाहर की किसी यात्रा को आयोजित करने का मौका मिलेगा, तो वह गाड़ी चलाने और सलाह देना का काम अपने चाचाजी के लड़के को देगा। उसके अनुसार वह पिताजी को कोई काम नहीं देगा। माँ को खाना बनाने का काम देगा और यात्रा के दौरान चीज़ें सँभालने और सफ़ाई का काम अपनी बहनों को देगा। इसी प्रश्न के उत्तर में सुरेश ने भी इसी से मिलते-जुलते जवाब दिए। उसने गाड़ी चलाने का काम पिताजी को दिया और सलाह देने का काम अपने दादाजी को दिया। माँ को खाना बनाने का काम दिया।

हमारे समाज में औरत को कुछ निश्चित कार्य करने की ही अनुमति है या उन्हें वहीं निश्चित काम करने के लायक माना जाता है (दुबे, 2004)। उनकी क्षमता और कार्यशक्ति पर हमारा पितृसत्तात्मक समाज हमेशा संदेह करता रहा है। इन दोनों बच्चों के विचारों में कोई नवीनता नहीं है। उन्हें यही लगता है कि औरतों को कुछ निश्चित काम ही करने चाहिए। सरकारी नीतियों और आधुनिकता की अवधारणा के तौर पर यह आवश्यक है कि ये बच्चे श्रम विभाजन की इस पारम्परिक विचारधारा को नकारें। जिस स्कूल में ये बच्चे पढ़ रहे हैं, वो भी इन बच्चों के विचारों को बदलने में असफल रहा है। लेकिन जहाँ तक आधुनिकता का प्रश्न है, इनके विचारों में ऐसी कोई आधुनिकता नहीं है, क्योंकि आधुनिकता विचारों में समानता और दूसरों के लिए सम्मान की माँग करती है (गुप्ता, 2008) और जिसका दावा ये 'इंटरनेशनल स्कूल' भी करता है।

जाति

इस विषय पर स्पष्ट जवाब मिलना एक जटिल काम था। दोनों ही जाति के नाम पर होने वाले भेदभाव को गलत मानते हैं। यह उनकी इस विषय पर पहली प्रतिक्रिया थी। परन्तु एक अलग प्रश्न में दोनों के ही विचारों में काफ़ी विरोधाभास लगा। दीपक का मानना है कि जाति जैसे मामलों में हमें अपने परिवार के लोगों की बात सुननी चाहिए। एक अलग प्रश्न में दीपक का कहना था कि जाति की समझ एक निश्चित उम्र के बाद आती है और उस उम्र तक पहुँचने से पहले बच्चे कोई गलती करते हैं तो उन्हें माफ़ कर देना चाहिए। इस प्रश्न पर सुरेश का मानना

है कि बड़े-बुजुर्गों को ऐसे मामलों में सतर्क रहना चाहिए, छोटे बच्चे जाति के नियमों को नहीं जानते।

ऐसे मामलों में लगता है कि दीपक और सुरेश दोनों ही किसी ऐसी दुविधा में फंसे हुए हैं, जिसमें उनके पास कोई एक निश्चित जवाब नहीं है। वे जाति व्यवस्था को गलत नहीं मानते, परंतु जाति के आधार पर हो रहे भेदभाव को गलत मानते हैं। दोनों बच्चों को यह भेदभाव बुरा लग रहा है, जो उनके आधुनिक हो जाने का संकेत है, परंतु जाति व्यवस्था में उनका विश्वास बना हुआ है, यह अंतर्द्वंद्व बहुत गंभीर है। ये द्वंद्व उनके स्कूल और सामाजिक परिवेश में अंतर की वजह से हो सकते हैं। ऐसे विरोधाभास बच्चे की अस्मिता को बहुत प्रभावित करते हैं, क्योंकि वे सही दिशा और निश्चित कदम तय नहीं कर पाते। स्कूल में दिए जाने वाले विचार घर पर मिले अनुभवों और मूल्यों से काफ़ी अलग होते हैं, जिनमें बच्चा सिर्फ़ उलझकर रह जाता है और कुछ कर नहीं सकता। जाति व्यवस्था में उनका विश्वास बना हुआ है, जो इस बात का संकेत है कि शिक्षा का उन बच्चों की उस बुनियादी विचारों की दुनिया पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ सका है।

ग्रामत्व

दीपक और सुरेश, दोनों को ही गाँव में रहना पसंद है। उन्हें गाँव की यह विशेषता अच्छी लगती है कि गाँव में सब लोग एक-दूसरे को जानते हैं। वे लोग मुसीबत में एक-दूसरे की सहायता भी करते हैं। उनका मानना है कि शहरों में ऐसा कुछ भी नहीं है। लोग शहरों में अपने ही जीवन में व्यस्त रहते हैं। दीपक का कहना है कि शहरों में खान-पान अच्छा

नहीं है। वहाँ के कुछ बच्चे फ़ास्ट फूड पर ज़्यादा निर्भर रहते हैं, जबकि गाँव में खाना अच्छा मिलता है और दूध-दही से सेहत भी अच्छी रहती है। उनका कहना है कि शहर के बच्चों की सेहत और शारीरिक क्षमता गाँव के बच्चों की अपेक्षा कम होती है। ग्रामत्व की यह भावना इन दोनों बच्चों की मानसिकता को भी प्रभावित करती है। उनके अनुसार गाँव के लोग काफ़ी सरल और सीधे होते हैं, जबकि शहरों में लोग चालाक होते हैं। दोनों ही अपना गाँव नहीं छोड़ना चाहते।

दीपक और सुरेश, दोनों ही शहरों को आधुनिक मानते हैं और गाँव को पिछड़ा बताते हैं। वहीं, दोनों आधुनिकता को आज की एक अहम ज़रूरत भी मानते हैं, लेकिन दोनों ही गाँव को छोड़ने से इनकार भी करते हैं। गाँव के प्रति लगाव और शहरों की चाह इन बच्चों को एक ऐसी जगह लाकर खड़ा कर देती है, जहाँ ये न तो गाँव छोड़ने की सोच सकते हैं और न ही शहरों में जाने का मन बना सकते हैं। ऐसी परिस्थितियाँ बच्चों में एक प्रकार का द्वंद्व पैदा कर देती हैं, जिससे वे बिना सोचे-समझे किसी के प्रति अपनी धारणा बना लेते हैं। ये दोनों ही बच्चे दो अलग-अलग दुनिया में रह रहे हैं। इनकी दुनिया कौन-सी है और ये किस दुनिया का हिस्सा बनना चाहते हैं? ऐसे प्रश्नों पर ये दोनों ही बच्चे निरुत्तर हैं। दोनों दुनिया को एक साथ लेकर चलना इन बच्चों में एक द्वंद्व पैदा कर रहा है।

आधुनिकता

उपरोक्त बिंदु से यह स्पष्ट है कि दोनों ही बच्चे गाँव के प्रति एक विशेष लगाव रखते हैं, लेकिन

जब उनसे पूछा गया कि आप अपने गाँव में कौन-से बदलाव चाहते हैं? तो इस पर उनके जवाब काफ़ी चौंकाने वाले थे। वैसे तो एक तरफ़ उन्हें गाँव पसंद है और शहरों को वे अच्छा नहीं मानते, परंतु जहाँ तक गाँव में बदलाव का प्रश्न है तो उन्हें गाँव में फ़ूड फ़ैक्ट्री, अच्छे शो-रूम और सिनेमा हॉल चाहिए। ये सुविधाएँ किसी जगह को शहर का रूप देती हैं। इतनी सुविधाएँ हो जाने के पश्चात् गाँव शायद गाँव न रहे, वह शहर बन जाए, परंतु इन दोनों बच्चों की नज़र में उनका गाँव शहर नहीं बनेगा। इस प्रकार दोनों ही बच्चे शहर में रहने से मना कर रहे हैं, परंतु शहर की विशेषताओं को अपने गाँव में लाना चाहते हैं।

दीपक और सुरेश, दोनों ही आधुनिकता को सिर्फ़ बड़ी इमारतों और सुविधाओं से जोड़कर देखते हैं। गाँव में वे दोनों भौतिक रूप से तो परिवर्तन चाहते हैं, परंतु अपनी विचारधारा, अपनी सोच और अपने मूल्यों में किसी प्रकार के परिवर्तन को स्वीकार नहीं करते। शहरों की बड़ी इमारतों और फ़ूड फ़ैक्ट्रियों को अपने गाँव में तो लाना चाहते हैं और यह भी मानते हैं कि इनके आने से उनके गाँव में कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। गाँव वैसा ही रहेगा, जैसा वह आज तक रहा है। इन्हीं विचारों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन बच्चों ने आधुनिकता का बहुत सीमित और संकुचित अर्थ समझा है और गाँव को बस कुछ ही बिन्दुओं से जोड़कर देखते हैं। इन बच्चों की मानसिकता में एक तरह का रूढ़िवाद घर कर गया है, जिसके कारण ये बच्चे गाँव को एक निश्चित नज़रिए से ही देखते हैं।

निष्कर्ष

सामाजिक परिवर्तन एक स्वाभाविक और निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। शहरीकरण और आधुनिकीकरण ने भारतीय गाँव का स्वरूप बहुत हद तक बदला है, लेकिन यह परिवर्तन अधिकांशतः भौतिक रूप तक ही सीमित लगता है। बड़ी इमारतों का बनना, बड़े शो-रूम का आना, इंटरनेट तक पहुँच, यातायात जैसी सुविधाओं का विस्तार होना, आदि को ही आधुनिकीकरण समझा जाता है (गुप्ता, 2002)। लोग आधुनिकता को अब तक अपने मूल्यों में नहीं ला पाए हैं।

परिवार और पारिवारिक सम्बन्ध आज भी उतने महत्वपूर्ण हैं, जितने पहले हुआ करते थे। बच्चों के लक्ष्यों, अपेक्षाओं, पसंद या नापसंद और अस्मिता को परिवार का वातावरण बहुत ही प्रभावित करता है। परिवार से मिले मूल्य और संस्कार बच्चों के लिए अहम भूमिका अदा करते हैं। इन्हीं मूल्यों और संस्कारों के साथ बच्चे स्कूल (जोकि घर और समाज से एक अलग परिवेश है) में जाते हैं। बच्चे एक निश्चित आयु के बाद भी छोटे-छोटे निर्णयों के लिए अपने परिवार और बड़ों पर निर्भर रहते हैं, इस मत को ठुकराया भी नहीं जा सकता, क्योंकि समय-समय पर समाजशास्त्री इस बात को अपने शोध कार्यों में स्वीकार कर चुके हैं। इसका बच्चों की अस्मिता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वे न तो आत्मविश्वासी बन पाते हैं और न ही विषम परिस्थितियों में कोई निर्णय ही ले पाते हैं। यह इस आधुनिक कहे जाने वाली शिक्षा का एक दोष है कि बच्चे न तो सवाल करना सीख सके हैं और न ही आलोचनात्मक बन सके हैं।

ये दोनों बच्चे दो अलग दुनिया में चल रहे हैं और जहाँ इन दो दुनियाओं का मिलन होता है या इन दोनों में से इन्हें किसी एक को चुनना होता है, तो ये उस दुनिया के साथ होते हैं जो इनके बुनियादी ढाँचों की दुनिया होती है। अर्थात्, ये अपने परिवार और समाज से मिले संस्कारों के साथ होते हैं। जाति, लिंग-भाव और लिंग के आधार पर ही कार्य-क्षेत्र का बंटवारा आदि पर इन बच्चों की वही सोच है, जोकि इनके परिवार ने इनमें विकसित की है। यह भी सत्य है कि प्राथमिक समाजीकरण की छाप इतनी आसानी से नहीं जाती, लेकिन आधुनिक स्कूल इस बात का भी दावा करते हैं कि बच्चों के विचारों में नवीनता और आधुनिकता का विकास करेंगे। 'इंटरनेशनल स्कूल' इस दावे को पूरा नहीं कर पा रहे हैं।

ये आधुनिक और 'इंटरनेशनल स्कूल' बच्चों के समाज से एकदम कटे होते हैं। बच्चों को समाज से हटकर शिक्षा देना उन बच्चों की अस्मिता को इस प्रकार प्रभावित करता है कि बच्चे सही निर्णय नहीं ले पाते और न ही अपने आपको किसी एक वर्ग में रख पाते हैं। इस तरह के द्वंद्वों का सामना पूरी जिन्दगी करना पड़ता है। स्कूल और घर पर अलग-अलग जीवन जी रहे ये बच्चे न तो अपने लक्ष्य निर्धारित कर पाते हैं और न ही सफल हो पाते हैं, केवल औसतन जीवन जीने पर मजबूर हो जाते हैं। वे न तो गाँव के ही बन पाते हैं और न ही आधुनिकता के प्रतीक कहे जाने वाले शहर से जुड़ पाते हैं।

जहाँ तक इन बच्चों के असमान विचारों का सम्बन्ध है, इनमें केवल उन्हीं विचारों में असमानता है जो बहुत ही सतही हैं, जैसे — क्या बोलना है, कितना

बोलना है, कैसे बोलना है? या कैसे सामान खरीदना है और कहाँ से खरीदना है? किस कंपनी के कपड़े या जूते अच्छे हैं? ये क्षेत्र उनकी बुनियादी समझ से जुड़े नहीं हैं। इन पर केवल उनको मिलने वाली सुविधाओं और उपलब्धियों का प्रभाव मात्र है, जोकि समय के साथ-साथ बदलता रहता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि ये स्कूल बच्चों के बुनियादी विचारों को प्रभावित करने में असमर्थ रहे हैं। उनका जो प्रभाव बच्चों पर है, वह केवल सतही है।

सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में पहले काफ़ी शोध कार्य हो चुका है। यह शोध एक छोटा-सा योगदान है। शहरीकरण तेज़ी से बढ़ रहा है और शायद ही भारत का कोई ऐसा हिस्सा हो जो शहरीकरण से अछूता हो। यह शोध उसी दिशा में लोगों, शिक्षाविदों और नीति-निर्माताओं का ध्यान आकर्षित करने का उद्देश्य भी रखता है। जो स्कूल बच्चों के परिवेश से कटकर उन्हें शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, उनका प्रसार रोका जाना चाहिए। जो स्कूल खुल चुके हैं, उन पर नई नीतियाँ बनाकर उनकी पाठ्यचर्या और नियमों में बदलाव करना चाहिए।

बच्चों का आगामी जीवन उनकी अपेक्षाओं, आत्मविश्वास और लक्ष्यों पर निर्भर करता है, परंतु ऐसा माहौल जो उन्हें द्वंद्व की स्थिति में लाकर खड़ा कर दे, उनके भविष्य के लिए सुरक्षित नहीं है। समाज और परिवार के विचार और संस्कार बच्चों में लम्बे समय तक विद्यमान रहते हैं, उस परिवेश से हटकर उन्हें पढ़ाना सुरक्षित नहीं है। आधुनिकता को सही अर्थों में समझकर बच्चों तक पहुँचाने का काम स्कूल का है, उसके लिए

स्कूल को प्रयासरत रहना चाहिए। शिक्षा यह जरूरी है कि आधुनिक और प्रगतिशील कहे आधुनिकीकरण का एक सशक्त साधन हो सकती जाने वाले स्कूल शिक्षा के विचारों में सकारात्मक है। मूल्यों और दृष्टिकोणों में परिवर्तन शिक्षा के परिवर्तन लाएँ, न कि उन्हें किसी प्रकार के अंतर्द्वंद्व माध्यम से सरल बनाया जा सकता है। इसके लिए में धकेल दें।

संदर्भ

- एल्किंड, डेविड. 1974. *चिल्ड्रेन एंड अडोलिसेंस*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.
- कक्कड़, एस. 1978. *इनरवर्ल्ड — ए साइकोएनालिटिक स्टडी ऑफ़ चाइल्डहुड एंड सोसायटी इन इंडिया*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस., दिल्ली.
- कुमार, कृष्ण. 1999. *चिल्ड्रेन एंड एडल्ट्स — रीडिंग एन ऑटोबायोग्राफी*. संपादन में सरस्वती, टी. एस. 1999. *कल्चर, सोशलआईज़ेशन एंड ह्यूमन डेवलपमेंट*. सेज पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली. पृ. 45–61.
- क्रेसवेल, जे. डब्ल्यू. 2012. *एजुकेशन रिसर्च*. — पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली.
- गुप्ता, दीपांकर. 1991. *सोशल स्ट्रेटिफ़िकेशन*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.
- . 2000. *द मिसटेकन मॉडर्निटी*. हार्परकालिंस पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.
- . 2008. *द चेंजिंग विलेजर*. सेमिनार 589. पृ. 47–50. दिसंबर 2008 को www.india-seminar.com/2008/589/589-dipankar-gupta.html से लिया गया है.
- . 2015. *दी इम्पोर्टेंस ऑफ़ बीइंग रूबर्न*. ई.पी.डब्ल्यू. वॉल्यूम 24. पृ. 37–43.
- जॉनसन, क्रिक. 2005. *ग्लोबलाइज़ेशन एट दी क्रॉसरोड्स ऑफ़ ट्रेडिशन एंड मॉडर्निटी इन रूरल इंडिया*. *सोशियोलॉजिकल बुलेटिन*. 54. न. 1 जनवरी-अप्रैल अंक. इंडियन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी. पृ. 40–58.
- दुबे, श्यामाचरण. 1985. *भारतीय समाज*. नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली.
- . 2005. *समय और संस्कृति*. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- . 2008. *परम्परा और परिवर्तन*. ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली.
- बेते, आंद्रे. 2002. *सोशियोलॉजी*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.
- बैस्ट, जे. डब्ल्यू और कोहन, जे.वी. 2008. *रिसर्च एजुकेशन*. प्रेन्टिस हॉल ऑफ़ इंडिया, नयी दिल्ली.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- रुडोल्फ और रुडोल्फ. 1967. *द मॉडर्निटी ऑफ़ ट्रेडिशन — पॉलिटिकल डेवलपमेंट इन इंडिया*. यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, शिकागो.
- श्रीनिवास, एम. एन. 1967. *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन*. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- . 2000. *भारत के गाँव*. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

भारतीय समाज के संदर्भ में बालकों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया का अध्ययन

कृष्ण कुमारी *

यह शोध नारीवादी परिप्रेक्ष्य के आधार पर लड़कों के लैंगिक समाजीकरण का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है जिसमें द्वितीयक स्रोत के लेखों के विश्लेषण के आधार पर लड़कों का जन्म से लेकर किशोरावस्था तक के लैंगिक समाजीकरण का अध्ययन किया गया है। जेंडर के मुद्दे के आवश्यक सिद्धान्त व पारिभाषिक शब्दों को समझा जा सके, इसके लिए संबंधित सिद्धांतों का संक्षिप्त आधार प्रस्तुत किया गया है। शोध में पितृसत्ता की व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले प्रत्येक बालक की जन्म से लेकर किशोरावस्था तक होने वाले मुख्य लैंगिक समाजीकृत अनुभवों जिसमें जन्म, लोरियाँ, शुरुआती पारिवारिक लगाव, सामाजिक खुलेपन के अनुभव, जीवन के लक्ष्य निर्धारित करने वाले आयाम से संबंधित अनुभव, शिक्षा, यौन, सांस्कृतिक विकास, इंद्रिय विकास, पुरुषत्व के गुणों के विकास का वर्णन किया गया है। लैंगिक विकास को व्यापक रूप से समझने के लिए कई स्थानों पर लड़का व लड़की को प्राप्त होने वाले अनुभवों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। शोध में समकालीन नारीवादियों व शिक्षाविद्, जैसे — निवेदिता मेनन, उषा नय्यर, कृष्ण कुमार, लीला दुबे आदि के लैंगिक समाजीकरण संबंधित लेखों को उद्धृत करते हुए उनका विश्लेषण किया गया है। संक्षेप में, यह शोध नारीवाद व लैंगिक समाजीकरण से संबंधित समकालीन राजनीति व बालकों के लैंगिक समाजीकरण का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

जब भी कोई लड़का किसी लड़की के साथ अमर्यादित व्यवहार करता है तो मन में हमेशा यह बात आती है कि उसकी क्या मानसिकता होगी व ऐसी मानसिकता उसने कहाँ से पाई होगी? हमेशा लेखिका के मन में यह प्रश्न उठता रहा है कि क्या लड़का होने के कारण यह मानसिकता जन्मजात है या फिर इसके कोई और कारण हैं? फिर यह भी विचार आता है कि अगर जन्म से ही ऐसी मानसिकता होती तो शायद सभी

पुरुषों में भी ऐसी ही मानसिकता होनी चाहिए थी, परंतु ऐसा नहीं है।

इन्हीं सब विचारों से जूझते हुए लेखिका ने इस विषय पर शोध करने का निश्चय किया। शोध के माध्यम से यह जानने का प्रयत्न किया कि लड़कों का लैंगिक समाजीकरण कैसे होता है? इस शोध के लिए आँकड़े द्वितीयक स्रोत से लिए गए हैं, अर्थात् इस विषय पर उपलब्ध शोधों व लेखों के

आधार पर बालकों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया को समझा गया है।

शोध के उद्देश्य

शोध के उद्देश्य इस प्रकार हैं —

1. बालकों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया को समझना।
2. बालक व बालिका में लैंगिक समाजीकरण संबंधित अनुभवों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

लेख को आगे बढ़ाने से पूर्व हमें यौन (सेक्स) व जेंडर में विभेद जानना ज़रूरी है। एन. ओकले (1972) सेक्स व जेंडर में विभेद करते हुए कहती हैं, “यौन एक जैविकीय अवधारणा है, उसका आधार शरीर है जबकि जेंडर सामाजिक और सांस्कृतिक सृजन है।” इसका तात्पर्य यह है कि सेक्स पूर्णतः शरीर से संबंधित है, जो सार्वभौमिक सत्य है; अर्थात् जो अंतर शरीर की संरचना के आधार पर पुरुष व महिला में होते हैं, उसे सेक्स के अंदर शामिल किया जाता है, परंतु शारीरिक संरचना में व्यक्तित्व, विचार, आदतें आदि नहीं बदल सकते। यदि विचारों के स्तर पर भी कोई अंतर हमारे समाज में महिला व पुरुष के बीच दृष्टिगोचर होता है तो यह शारीरिक अंतर की देन नहीं हो सकता। शारीरिक अंतर मूर्त होते हैं, दृश्य सक्षम होते हैं, परंतु हमारे समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के अंतर शारीरिक से कहीं ज्यादा हैं। मूल्यों, विश्वासों, रीति-रिवाजों के आधार पर भी अंतर विद्यमान है और इनका आधार शारीरिक न होकर सामाजिक है। शरीर के आधार पर स्त्री-पुरुष के मूल्यों में अंतर नहीं आता।

लैंगिक समाजीकरण के बारे में प्रसिद्ध नारीवादी निवेदिता मेनन (2001) भी यही समझाती हैं कि सेक्स जैविक अर्थ की तरफ इशारा करता है, जबकि जेंडर उसके सांस्कृतिक अर्थ से संबंधित है व जेंडर का स्त्री-पुरुष की जैविक संरचना से कोई सह-संबंध नहीं है। जेंडर बच्चों के लालन-पालन की क्रिया है। निवेदिता मेनन जैविक निर्धारणवाद (बायोलॉजिकल डिटरमिनिज़्म) अर्थात् स्त्री-पुरुष के बीच सांस्कृतिक अंतर को जैविक या कुदरती मानकर अपरिवर्तनीय व जायज़ मानने की अवधारणा को भी खारिज करती हैं। जन्म के समय बच्चे का लिंग निर्धारित होता है, परंतु जेंडर नहीं। जेंडर निर्धारण अलग-अलग समुदाय में समाजीकरण प्रक्रिया द्वारा अलग-अलग होता है। बच्चे का लिंग निर्धारण प्रसव पूर्व भ्रूण में स्वतः होता है, परंतु जेंडर निर्धारण स्वतः नहीं होता। इसमें वातावरण की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष भागीदारी होती है। यही कारण है कि अलग-अलग समाज में जेंडर अवधारणा में फ़र्क होता है। यदि जेंडर भूमिका भी स्वतः होती तो पूरे विश्व में जेंडर भूमिका समान होती, परंतु ऐसा नहीं है, जेंडर भूमिका में काल, स्थान एवं वातावरण के अनुसार अंतर पाया जाता है।

जेंडर समाजीकृत होता है। छोटा बच्चा जब जन्म लेता है तो वह इन सब सामाजिक परम्पराओं से अनजान होता है, परन्तु धीरे-धीरे वह अपने समाज में पुरुष की अवधारणा या महिला की अवधारणा को आत्मसात् कर लेता है। इस आत्मसात् करने की प्रक्रिया को लैंगिक समाजीकरण कहते हैं।

स्थूल नज़रों से देखने पर यह शरीर पर आधारित लगती है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता

है कि यह सोची-समझी प्रक्रिया के अंतर्गत होता है जिसे पितृसत्ता प्रथा कह सकते हैं। पुरुष को समाज में उच्च स्थान दिया जाता है व महिला अधीनस्थ की भूमिका में होती है। समाज की प्रत्येक महिला व पुरुष को इस व्यवस्था के अंतर्गत ढालने के लिए समाज द्वारा लैंगिक समाजीकरण किया जाता है। गर्दा लर्नर (1986) पितृसत्ता की व्याख्या करते हुए समझाती हैं कि पितृसत्ता का अर्थ परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुष के वर्चस्व की अभिव्यक्ति और संस्थागतकरण तथा सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है। इसका अभिप्राय है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएँ ऐसी सत्ता तक पहुँच से वंचित रहती हैं।

यह प्रक्रिया भी जानना बहुत रुचिकर होगा कि कैसे कोई बच्चा सामाजिक मूल्य से अनभिज्ञ होकर जन्म लेता है, परंतु जब वयस्क होता है तो पितृसत्ता निर्धारित व्यवहार करने लगता है। उसे कौन इस तरह व्यवहार करना सिखाता है? वह किस तरह पितृसत्ता से संबंधित पुरुषत्व को धारण करता है? इस लेख में हम यही जानने का प्रयास करेंगे कि कैसे एक लड़का पितृसत्ता की व्यवस्था को बनाए रखने की मंशा रखते हुए पितृसत्ता की व्यवस्थानुसार स्वयं को ढालता है। वे कौन-कौन सी संस्थाएँ हैं तथा कौन-कौन से तरीके हैं जिससे लड़का समझ जाता है कि उसे बड़े होकर किस तरह पुरुषत्वानुसार व्यवहार करना है। समाजीकरण किस तरह व्यक्ति की सोच को बढ़ाता है। इस शोध में लड़कों के जन्म से लेकर किशोरावस्था तक प्राप्त होने वाले उन अनुभवों की चर्चा की गई है।

वर्तमान समय में नारीवादी विचारधारा की आबो-हवा है। इसी कारण कई नारीवादियों ने लड़कियों के समाजीकरण की जाँच पड़ताल की है कि कैसे लड़कियाँ स्त्रियोचित व्यवहार करना सीख जाती हैं, परंतु लड़के किस प्रकार पुरुषत्व ग्रहण करते हैं? यह अभी भी अबूझ है। यदि वर्तमान समाज को जेंडर संतुलित बनाना है तो केवल लड़कियों की समाजीकरण प्रक्रिया का अध्ययन करके उसमें आवश्यक जागरूकता व परिवर्तन लाना न सिर्फ़ अधूरी कोशिश होगी, बल्कि समाज में असंतोष भी पैदा करेगी। यदि लड़के परम्परागत भूमिका में होंगे व लड़कियाँ परिवर्तन को आत्मसात् करेंगी तो समाज में टकराव उत्पन्न हो सकता है। इसलिए लड़कियों के लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया के साथ-साथ लड़कों के लैंगिक समाजीकरण को जानना व उसमें आवश्यक परिवर्तन लाना भी जेंडर संतुलित समाज की स्थापना के लिए आवश्यक है। इस लेख में लड़कों की लैंगिक समाजीकरण प्रक्रिया का अध्ययन द्वितीयक स्रोतों के लेखों के विश्लेषण के आधार पर किया गया है।

पीटरबर्ग (1967) के सिद्धांत को समाजीकरण सिद्धान्त का आधार मानते हुए प्राथमिक समाजीकरण (परिवार) द्वारा लड़कों के लैंगिक समाजीकरण का अध्ययन किया गया तथा लड़कों का लैंगिक समाजीकरण समझने के लिए कई स्थानों पर लड़कियों के समाजीकरण प्रक्रिया से तुलना भी की गई है।

परिवार — सामान्यतः माना जाता है कि बच्चे का प्राथमिक समाजीकरण परिवार व आस-पास के वातावरण में होता है। बच्चे के लिए सम्पूर्ण

दुनिया उसका घर ही है तथा घर के बड़ों के माध्यम से ही बच्चा दुनिया को जानता है (कुमार, 2014)। प्राथमिक समाजीकरण में परिवार के सदस्य बच्चों के समक्ष अनुभव को अपने सन्दर्भों, मान्यताओं, विश्वास, दृष्टिकोण आदि के आधार पर संशोधित करके प्रस्तुत करते हैं (बर्ग, 1967)।

लैंगिक समाजीकरण लड़के के जन्म से ही प्रारंभ हो जाता है। चोमस्की (2002) मानते हैं कि बच्चा एक सक्रिय सामाजिक प्राणी है। शुरुआती परवरिश का प्रभाव उसके भावी जीवन पर पड़ता है। इसी सन्दर्भ में बोल्बी (1969) के अध्ययन से भी पता चलता है कि लगाव के सन्दर्भ में बच्चों के बचपन के अनुभवों का असर बच्चों की किशोरावस्था में आत्मविश्वास और अभिव्यक्ति पर पड़ता है। जन्म से ही लड़का व लड़की के अनुभवों में भिन्नता प्रारंभ हो जाती है। बेटे के जन्म पर खुशी-खुशी समारोह आयोजित किए जाते हैं, जबकि बेटी के जन्म पर दुःख की अभिव्यक्ति के साथ-साथ भाग्य को कोसा जाता है। शुरुआती परवरिश में यही भावनाएँ उनके बाद के जीवन पर असर डालती हैं। बचपन में लगाव व सुरक्षा की भावना बाद के जीवन में आत्मविश्वास व अभिव्यक्ति भर देती है। परवरिश के दौरान लड़का समझने लगता है कि उसका स्थान लड़की से कहीं ऊपर है और इस समझ को लड़का आत्मसात् कर लेता है व इस विश्वास के अनुरूप व्यवहार करना प्रारंभ कर देता है।

बच्चे की शुरुआती परवरिश में लोरी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लोरी के माध्यम से माँ बच्चे को प्यार करती है, सम्प्रेषण करती है, कल्पनाएँ

करवाती है। लोरी सुनकर बच्चा संगीत का आनंद लेते हुए लोरी के अर्थ की कल्पनाएँ करता है।

एक अध्ययन में यह पाया गया कि 400 में से केवल तीन लोरियाँ लड़कियों के लिए थीं (नय्यर, 1997)। यहाँ पर लड़कों की लोरी का एक उदाहरण दिया गया है जिसमें लोरी के माध्यम से जेंडर असमानता को बढ़ावा मिल रहा है व लड़कों में पितृसत्ता अनुरूप गुण विकसित करने के लिए आवश्यक लैंगिक समाजीकरण किया जा रहा है।

मत रो, मेरे सुन्दर बच्चे,
मैं तुम्हारे लिए दुल्हनियाँ लाऊँगी।
उसका रंग सोने जैसा होगा,
उसके होंठ लाल कली होंगे,
मैं बड़े-बड़े कनस्तरोँ में घी भरूँगी,
मैं बढ़िया चावल पकाऊँगी,
मेरा बेटा पेट भरकर खाएगा,
उसकी पत्नी उसकी खाली थाली चाटेगी।
(लीला दुबे, 2004)

उपरोक्त लोरी की चर्चा से दो बातें सामने आती हैं। पहली, बच्चों की परवरिश के प्रति लड़के को ही ध्यान में रखा जाता है। दूसरी, जब बच्चा रोता है तो हम उसकी पसंद की वस्तु लाकर देते हैं, ताकि उसका ध्यान उस वस्तु पर रहे तथा वह न रोए। उपरोक्त लोरी में रोने पर दुल्हनियाँ लाने की बात स्त्री को पुरुष की नज़र में वस्तु की तरह प्रस्तुत करती है। लोरी की अगली पंक्तियाँ उस वस्तु रूपी स्त्री को रंग और होंठ आदि के सन्दर्भ में देखने व मूल्यांकन करने को प्रेरित करती हैं तथा अंत की पंक्तियाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा वर्णित स्त्री अधीनता का वर्णन करती

हैं। सामान्य लड़का इस तरह की लोरियों को सुनकर मन में स्त्री की पहचान, उसकी अस्मिता, वजूद के सन्दर्भ में विचार नहीं बना सकता, बल्कि वह स्त्री को उपभोग की वस्तु मानने का आदि हो जाएगा तथा रंग, रूप, सुन्दरता के आधार पर उसका मूल्यांकन भी करेगा व उसे स्वयं के अधीन रखने की बात भी स्वीकार करेगा। इन सभी प्रकार के अनुभवों से गुजरते हुए बच्चा अपने अन्दर पितृसत्ता अनुसार अपेक्षित पुरुष गुण को आत्मसात् कर लेता है।

दो-तीन वर्ष की आयु तक बच्चों को लड़का-लड़की का ज्ञान हो जाता है। उनको लिंग विशेष भूमिका आधारित नामों से अलंकृत किया जाता है। अलग-अलग तरह के वस्त्र दिए जाते हैं। लड़कियों को खेलने के लिए गुड़िया, रसोई के बर्तन रूपी खिलौने दिए जाते हैं और लड़कों को बन्दूक, कार और हवाई जहाज से खेलने को प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रकार, इसी आयु से ही नर-नारी के दायरे निश्चित हो जाते हैं। इस तरह की गतिविधियों से लड़के और लड़कियों की रुचियाँ खास दिशा में धाराबद्ध होने लगती हैं। जिससे आगे चलकर उनकी योग्यता, रवैये, आकांक्षाओं और सपनों का विकास भी अलग-अलग दिशाओं में होने लगता है।

बचपन में लड़का घर में बड़ों को निक्कर पहने घूमते देखता है। यह सब देखकर उसको यह बात समझ आ जाती है कि लड़कों का शरीर दिखना ज्यादा चिंता की बात नहीं है। यह सामान्य तथा स्वीकार्य है। इस तरह लड़कों में शरीर या अंग के प्रति बेपरवाह, शर्मिंदा न महसूस होना जैसे गुण विकसित होने लगते हैं तथा घर व सार्वजनिक स्थान

पर वे ऐसा हाव-भाव सीखने लगते हैं। लड़के इन सबको समाजीकरण द्वारा आत्मसात् करते हैं। वहीं लड़कियों को अपने तन को ढककर रखना सिखाया जाता है तथा यह भी सिखाया जाता है कि यदि पुरुष को इस अवस्था में देखें तो वहाँ से चली जाएँ। यदि जाना संभव न हो तो कम-से-कम नज़र झुका लें या उस तरफ़ से नज़र फेर लें। मूत्र त्याग, खुजली होना, गर्मी लगना, ये सब दैहिक क्रियाएँ हैं जिन्हें पुरुष या लड़का दैहिक रूप से घर या सार्वजनिक स्थान पर करता है। यह उसकी हर वक्त आरामदायक स्थिति में रहने को इंगित करता है। दैहिक क्रियाओं की आवश्यकता अगर किसी लड़की को सार्वजनिक स्थान पर हो तो उसके पास सहने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है और इस तरह लड़की कष्टदायक स्थिति को सहने की आदत विकसित कर लेती है और लड़का सार्वजनिक स्थान पर भी आरामदायक स्थिति में रहने की आदत विकसित कर लेता है।

कृष्ण कुमार (2014) लड़कों के समाजीकरण पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं कि किस प्रकार लड़का व लड़की के जीवन का लक्ष्य समाजीकरण द्वारा अलग हो जाता है। वे समझाते हैं कि पुरुष के जीवन में पति और पिता बनने के बाद और साथ-साथ भी बहुत कुछ होता रहता है, जो मनुष्य होने के नाते बनी रहने वाली सार्थकता की भूख को शांत करता है। यह भूख पुरुष मानस में अपनी रुचि का काम सीखते रहने और उसके कौशल प्राप्त करने की इच्छा बनाए रखती है और इस तरह उसकी व्यक्तिगत पहचान का साधन बनती है। पुरुष का जीवन कुछ अलग पहचान लिए व्यक्तित्व की तह तक खुलकर पूर्णता प्राप्त करने

का प्रयास करता है। इसके विपरीत स्त्री के जीवन में विवाह और मातृत्व का लक्ष्य ही मुख्य लक्ष्य के रूप में समाजीकरण द्वारा प्रदान किया जाता है जिसमें व्यक्तित्व पहचान का लक्ष्य गौण हो जाता है।

कृष्ण कुमार (2014) आगे व्यक्तित्व विकास में इन्द्रियों का महत्व बताते हुए लड़कों और लड़कियों में इन्द्रिय विकास की असमानता का भी जिक्र करते हैं। उनके अनुसार लड़का अपनी इन्द्रियों का प्रयोग अपनी मानसिक व शारीरिक स्वतंत्रता के अनुसार करता है। यदि दृष्टि की बात करें तो लड़का कहीं भी आते-जाते हुए बेरोकटोक कुछ भी देखते हुए आगे बढ़ता है। जो वस्तु उसे अधिक आकर्षक लगेगी, उसे वह रुककर भी देख सकता है। अपनी दृष्टि द्वारा दुनिया के असीम अनुभव प्राप्त करने की स्वतंत्रता उसके स्वयं के पास है। वहीं लड़की से अपेक्षा की जाती है कि वह आँखें नीची करके चले, किसी वस्तु या व्यक्ति पर अपनी आँख एकाग्र न करे और निरुद्देश्य रूप से इधर-उधर न देखे। इन्द्रियों का विकास भी लड़कियों में लड़कों के मुकाबले कम होने दिया जाता है। इन्द्रियों के विकास की मात्रा उम्र बढ़ने के साथ-साथ लड़कों के लिए बढ़ती जाती है और लड़कियों के लिए घटती जाती है। परिणामस्वरूप, लड़के व्यक्तित्व पहचान बनाने में और सक्षम हो जाते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के सन्दर्भ में इन्हीं अंतरों के कारण लड़कों के पास सैद्धांतिक ज्ञान, जिसे वे स्कूल में सीखते हैं, के साथ-साथ वास्तविक ज्ञान भी होता है, परन्तु लड़की इस वास्तविक ज्ञान से धीरे-धीरे दूर होती जाती है। इसका प्रभाव आगे जाकर दोनों की पेशेगत जिन्दगी पर भी पड़ता है।

जहाँ लड़के सामान्यतः अधिक सफल होते हैं व लड़कियाँ प्रतियोगिताओं में पिछड़ जाती हैं।

यदि चलने जैसी आम क्रिया की बात की जाए तो इसका भी सांस्कृतिक पक्ष लड़का व लड़की के लिए भिन्न है। लड़का जब चलने की क्रिया करता है तो यह सामान्य क्रिया समझी जाती है। उसे अपनी चाल पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं होती और न इस बात का जिक्र करने की कि उसकी चाल स्वीकृत है या नहीं। सामान्यतः अपनी चाल पर लड़कों का ध्यान नहीं जाता, बल्कि चलते समय चलकर उन्हें जिस उद्देश्य की पूर्ति करनी है, उस पर होता है, परन्तु लड़कियाँ किशोरावस्था तक पहुँचते-पहुँचते यह सीख चुकी होती हैं कि अपनी चाल को दूसरों, खासकर पुरुषों की निगाह से देखकर चलना चाहिए।

इस तरह के अनुभवों से गुज़री लड़की चाल, सुन्दरता और व्यवहार के नज़रिये से 'स्वीकार्य लड़की' की अवधारणा बना लेती है। वह दूसरों की नज़र से स्वयं की चाल, सुन्दरता और व्यवहार के आधार पर मूल्यांकन करना सीख जाती है। लड़कों के लिए शारीरिक सन्दर्भ खासकर चाल, उठना-बैठना, व्यवहार आदि के आधार पर दूसरे उनके बारे में क्या सोचते हैं, ज्यादा महत्व नहीं रखता। इसलिए दूसरों के प्रति स्वयं का परिप्रेक्ष्य बनाने के कौशल में वह शारीरिक सन्दर्भ को आधार नहीं बनाते।

लड़कियों के लिए किशोरावस्था का काल अपनी सुन्दरता के प्रति सचेत व माँ, पत्नी और विवाह के लिए स्वयं को तैयार करने का होता है। परन्तु लड़कों में किशोरावस्था का प्रारंभ लड़कियों से एकदम भिन्न होता है। उनके लिए यह काल उनके

पुरुष बनने का लक्षण प्रतीत कराता है। इस काल में उनमें यौन का सामर्थ्य विकसित हो जाता है। पुरुषत्व के तमाम गुण, जैसे — ताकत, आक्रामकता, निर्भय, प्रभुत्व, हिंसा, कठोरता और बहादुरी किशोरावस्था में चरम अवस्था पर होते हैं। हालाँकि लड़कों में इन गुणों का विकास जन्म के साथ ही परिवार या अन्य संबंधियों द्वारा प्रारंभ कर दिया जाता है।

किशोरावस्था में लड़का व लड़की को लेकर एक और अंतर है — ‘गाली’। किशोर होते-होते प्रायः लड़के गालियाँ देना प्रारंभ कर देते हैं, वहीं लड़कियों को गाली देने से न सिर्फ बचना सिखाया जाता है बल्कि यह भी सिखाया जाता है कि जहाँ गाली का प्रयोग हो, वहाँ से चले जाना चाहिए। लड़कियाँ गाली देना तो दूर, गाली न सुनने को भी तैयार की जाती हैं। यौन आधारित गालियों का प्रयोग लड़कों की आम बोल-चाल की भाषा में सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस तरह गालियों का प्रयोग करना लड़कों में हिंसात्मक, आक्रामकता, यौन उत्तेजना तथा यौन गतिविधियों को बहादुरी से जोड़ने की मानसिकता को विकसित करता है। गालियों में यौन को लेकर कर्ताभाव पुरुष का होता है तथा कर्मभाव स्त्री के लिए होता है। इस तरह की भाषा शैली स्त्री को वस्तु के रूप में चिह्नित करती है तथा संभोग पर पुरुष का एकाधिकार भी निश्चित करती है। गालियाँ यौन को ‘बदला लेने’ के सन्दर्भ में भी मान्यता देती हैं। इसी कारण संभव है कि बलात्कार की घटनाएँ बदला लेने या नुकसान पहुँचाने के उद्देश्य से की जाती हैं।

बालिका की देह पर स्त्री होने के लक्षण उसे युवक बन रहे पुरुषों और प्रौढ़ों की दृष्टि में लाएँगे,

इस आधार का हवाला देकर वयस्क अर्थात् व्यवस्थाबद्ध-समाज किशोरी के चलने-फिरने और घर से बाहर दिखने पर प्रबंध लगाता है। परन्तु कभी भी समाज पुरुष पर लड़की को न देखने का नियंत्रण, उसमें कामोत्तेजना आने पर उसे रोकने का नियंत्रण नहीं लगाता है। यह मानसिकता लड़का व लड़की की यौनिकता के प्रति समाज के दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। व्यावहारिक समाज पुरुष की लालसा को इस रूप में स्वाभाविक ठहराता है कि उस पर नियंत्रण संभव नहीं है अर्थात् लालसा महसूस करना और उस पर काबू न रख पाना, ये दोनों ही सामान्य पुरुष होने के लक्षण हैं। इस सन्दर्भ में हमारे समाज की मानसिकता का झुकाव पुरुष के पक्ष में दिखता है। पितृसत्तात्मक समाज के यही लक्षण होते हैं। इस तरह की मानसिकता अनजाने में ही लड़कों को स्त्री शोषण, यौन अपराध जैसे अमानवीय व्यवहार को तार्किक व स्वाभाविक मानकर उन्हें ऐसे अमानवीय व्यवहार करने की स्वतंत्रता देती है। यह लालसा और कामभावना पुरुषत्व का प्रतिबिम्ब बन जाती है।

इस समाजीकरण प्रक्रिया में जो लड़के पितृसत्ता अनुरूप आवश्यक गुण, जैसे — तार्किकता, बल, बुद्धिमत्ता, आक्रामकता, प्रतियोगी प्रवृत्ति, बहादुरी, मुखरता, निर्भयता, हिंसात्मकता, स्वतंत्र व प्रभुत्वशाली आदि गुण विकसित नहीं कर पाते, समाज उन्हें लगातार ढालते रहने की प्रक्रिया करता रहता है, क्योंकि पुरुषत्व के बिना पुरुष समाज में स्वीकार्य नहीं है। वास्तव में, पुरुषों के हाथ में भी चुनाव नहीं है। उन्हें भी पितृसत्ता अनुरूप पूर्वनिश्चित ढाँचे में ढलना ही पड़ता है, नहीं तो समाज उन्हें

स्वीकार नहीं करेगा। समाज पुरुष से यही अपेक्षा करता है कि लड़के लड़कियों पर प्रभुत्व दिखाएँ और इसी अनुरूप व्यवहार करने के लिए समाज लड़को पर लगातार दबाव डालता रहता है। जिस तरह लड़की में घर न संभालने का गुण, कुरूपता, लड़ाकू, झगड़ालू आदि जैसे गुण होंगे तो उसे शादी और ससुराल का उदहारण देकर स्त्रीत्व के गुण आत्मसात् करने को बढ़ावा दिया जाता है; ठीक उसी प्रकार लड़कों को भी आक्रामक, मर्दाना, हिंसात्मक, प्रभुत्वशाली आदि बनने को समाज लगातार बढ़ावा देता रहता है। जो लड़के बहादुर नहीं होते यानी कमजोर होते हैं, उनका भी आक्रामक पुरुषों द्वारा शोषण किया जाता है। शोध दर्शाते हैं कि जिन लड़कों के साथ बचपन में हिंसात्मक या यौन शोषण हुआ हो वे वयस्क होने पर स्वयं हिंसात्मक व अपराधी स्वभाव के हो जाते हैं। (भसीन, 2002)। पितृसत्तात्मक समाज में लड़का व लड़की दोनों पर अपने लिंग अनुसार गुण अर्जित करने का दबाव रहता है। बेरोजगार होना भी पुरुष के लिए गहन चिंता का विषय है। चूँकि पितृसत्ता अनुसार घर का आर्थिक व्यवस्थापक पुरुष को ही होना चाहिए और यदि पुरुष आर्थिक आमदनी नहीं कर पाता तो वह स्वयं को अपूर्ण मानता है तथा इस कारण आत्मग्लानि से भर जाता है, जो आगे अवसाद में भी परिवर्तित हो सकती है। पुरुष को समाज की स्वीकृति पाने के लिए शक्तिशाली, बहादुर, यौन रूप से सफल व स्त्रियों को अपने अधीन करने का गुण अर्जित करने की मजबूरी होती है। जो पुरुष इन पैमानों पर खरा नहीं उतर पाता, उसे समाज का विरोध और अलगाव सहन करना पड़ता है।

पुरुषत्व की धारणा लड़कों को सामान्य जीवन नहीं जीने देती। स्त्रीत्व के रूप में मान्य गुणों को लड़कों में विकसित नहीं होने दिया जाता। इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण बात यह भी है कि पुरुषत्व व स्त्रीत्व में श्रेष्ठ/हीन का सम्बन्ध है। समाज पुरुषत्व को श्रेष्ठ और स्त्रीत्व को हीन मानता है। इसी कारण, यदि लड़कियों में पुरुषत्व के गुण दिखते हैं तो यह गर्व की बात मानी जाती है, परन्तु लड़कों में स्त्रीत्व के गुण ग्लानि, शर्म, अपूर्णता और अपमान का सूचक होते हैं। पुरुषत्व में स्त्रीत्व के शोषण का कार्य भी सम्मिलित होता है। जिन पुरुषों में किसी भी कारण से पुरुषत्व के गुण, जैसे — ताकत, मजबूती, बहादुरी आदि गुण विकसित नहीं हो पाते, उनका ताकतवर पुरुषों द्वारा शोषण किया जाता है। इस तरह समाजीकरण द्वारा जनित पुरुषत्व की धारणा पुरुषों का अमानवीकरण करती है।

शोध का औचित्य

शोध बालकों के जेंडर समाजीकरण की समझ विकसित कराता है। यह शोध उन सभी दार्शनिक विचारों का खंडन करता है जो पितृसत्ता के अंतर्गत पुरुषत्व व नारीत्व में व्याप्त अंतर को जैविक मानकर सही ठहराते हैं, जिसे जैविक निर्धारणवाद भी कहते हैं। शोध का औचित्य इस बात से भी है कि इसमें लड़कों के लैंगिक समाजीकरण का विस्तृत वर्णन है। सामान्यतः लड़कियों के जेंडर समाजीकरण पर बहुत-से शोध उपलब्ध हैं, परन्तु केवल लड़की का जेंडर समाजीकरण समाज में व्याप्त पितृसत्ता की अधूरी जानकारी देता है। जब तक लड़कों के भी जेंडर समाजीकरण को नहीं समझा जाएगा, तब तक समाज में समतामूलक मूल्यों की स्थापना नहीं की जा

सकती। जिस तरह यह जानना ज़रूरी है कि लड़कियाँ किस तरह पितृसत्ता के अंतर्गत अपना निम्न दर्जा स्वीकार करती हैं व स्वयं पर पुरुष का नियंत्रण स्वीकार करती हैं, उसी प्रकार यह भी जानना ज़रूरी है कि किस तरह पितृसत्ता के अंतर्गत लड़कों को लड़कियों पर नियंत्रण करना व उनको निम्न दर्जा देना सिखाया जाता है। यह शोध इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस शोध में लड़कों के समाजीकरण का एकतरफा वर्णन नहीं है, अपितु इसमें लड़कों पर भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले दबाव व शोषण का वर्णन किया गया है। यह शोध अतिवादी नारीवादियों की भी आलोचना करता है जो लड़कियों के दोयम दर्जे का सारा ठीकरा पुरुषों पर फोड़ते हुए एक अलग समाज की कल्पना करते हैं और यह नहीं समझते कि असल में चुनाव पुरुषों के हाथ में भी नहीं है। जिस तरह लड़कियाँ दोयम दर्जा स्वीकार करने को बाध्य की जाती हैं, ठीक उसी प्रकार पुरुषों को भी बहुत छोटी उम्र में ही यह विश्वास दिला दिया जाता है कि वे नारी से ऊपर हैं व उन्हें नारी का नियंत्रण करना है। जो पुरुष ऐसा नहीं करते, समाज उन्हें भी स्वीकार नहीं करता।

शोध का शैक्षिक महत्व

शिक्षा की दृष्टि से यह शोध बहुत ही महत्वपूर्ण है। एन.सी.एफ. 2005 व एन.सी.ई.आर.टी. पोलीशन पेपर 'जेंडर इश्यूज इन एजुकेशन', 2006 स्पष्ट रूप से शिक्षा द्वारा जेंडर से संबंधित रूढ़िवाद को समाप्त करने की अपील करता है। यह जेंडर को अंतर के रूप में न देखकर इसे एक असमानता के रूप में देखे जाने की बात करता है। पुरुषत्व व नारीत्व की पारंपरिक

भूमिका को नकारते हुए इसे विवेचनात्मक दृष्टिकोण से देखने की बात करता है। इन सब मुद्दों के आधार पर यह शोध शिक्षा की दृष्टि से काफ़ी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। शोध जेंडर समाजीकरण का विस्तृत उल्लेख करता है और शिक्षा/स्कूल समाजीकरण का एक मुख्य घटक है, ऐसे में प्रत्येक उस शिक्षक व अभिभावक के लिए यह शोध महत्वपूर्ण है जो लैंगिक समाजीकरण से जुड़े हुए हैं व शिक्षा के माध्यम से असमानता रहित पुरुषत्व व नारीत्व का विकास करने के इच्छुक हैं। स्कूल केवल ज्ञान का ही स्रोत नहीं हैं, बल्कि समाजीकरण में भी मुख्य भूमिका निभाते हैं जिसमें जेंडर समाजीकरण भी शामिल है। ऐसे में स्कूलों का यह उत्तरदायित्व है कि वे आने वाली पीढ़ी में जेंडर समानता के मूल्य विकसित करें और यह सिर्फ लड़कियों में जेंडर समानता की चेतना से पूरा नहीं होगा, बल्कि इसमें लड़कों को भी नए जेंडर मूल्य, जो उन्हें नियंत्रक की भूमिका से निकालकर एक सहयोगी की भूमिका से लैस करें, का भी विकास करना ज़रूरी है। इसलिए यह शोध शिक्षा व लैंगिक समाजीकरण से जुड़े लोगों के लिए प्रासंगिक है व उन्हें दिशानिर्देश हेतु उचित चेतना विकसित करने योग्य भी बनाता है। भावी शिक्षकों में भी जेंडर समानता की चेतना व समतामूलक सिद्धांतों पर आधारित नवीन जेंडर दृष्टिकोण विकसित करने में यह शोध अहम भूमिका निभा सकता है।

निष्कर्ष

इस शोध का केंद्र बिंदु बालक का लैंगिक समाजीकरण है। शोध का निष्कर्ष भी यही है कि जेंडर अवधारणा से अनजान जन्मा बालक किस

तरह सामाजिक प्रक्रिया से गुजरता हुआ स्वयं में पुरुषत्व के गुण धारण कर लेता है। इस प्रक्रिया में वह अनजाने में अमानवीय मूल्य, जैसे — हिंसात्मकता, क्रोध, नियंत्रक आदि जिसे पितृसत्तात्मक समाज मर्दानगी कहता है, को धारण करता है। ये सारे मूल्य व्यक्ति में सामाजिक जागरूकता आने से पहले ही विश्वास, मान्यता, आदत के रूप में भर दिए जाते हैं और इस तरह ये मूल्य स्थायी हो जाते हैं। जिन बालकों में इस तरह के गुण विकसित नहीं हो पाते, पितृसत्तात्मक समाज उनकी अवहेलना करता है व इन मूल्यों को विकसित करने की लगातार कोशिश

करता है। संक्षेप में, इस शोध का मूल निष्कर्ष यही है कि पितृसत्तात्मक समाज में चुनाव पुरुष के हाथ में भी नहीं है, उन्हें भी पूर्व-निर्धारित खाके में ढलना पड़ता है। यह अलग बात है कि पितृसत्तात्मक समाज ने पुरुषों को मुख्य भूमिका दी है व महिलाओं को अधीनस्थ की, परंतु चुनाव किसी के भी पास नहीं है। पुरुषत्व व नारीत्व दोनों की ही भूमिकाओं में परिवर्तन की आवश्यकता है ताकि पुरुष नियंत्रक की भूमिका को छोड़ें व महिलाएँ समर्पित होने की भूमिका को त्यागें तथा दोनों सहयोगी की भूमिका अपनाएँ।

संदर्भ

- ओकले, एन. 1972. *सेक्स, जेंडर एंड सोसाइटी*. राउतले. लंदन.
- कुमार, कृष्ण. 2014. *चूड़ी बाज़ार में लड़की*. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- गीता, वी. 2002. *जेंडर. स्त्री*, कलकत्ता.
- . 2007. *जेंडर. स्त्री*, कलकत्ता.
- चोपड़ा, आर (संपादक). 2002. *साउथ एशियन मस्कुलिनिटी*. काली फ़ॉर वुमन, नयी दिल्ली.
- चोमेस्की, नोम. 2002. *सिंटेक्टिक स्ट्रक्चर्स*. मॉटन डी ग्रूटर, न्यूयॉर्क.
- दुबे, लीला. 1997. *वुमेन एंड किनशिप*. विज़टर पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.
- . 2004. *लिंगभाव का मानव वैज्ञानिक अन्वेषण — प्रतिच्छेदी क्षेत्र*. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- नय्यर, उषा. 1997. *बालिका का सकारात्मक आत्मबोध विकास*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- बर्जर, पी.एल. और टी. लकमैन. 1967. *दि सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ़ रिएलिटी — ए ट्रीटाईज इन दि सोशयोलॉजी ऑफ़ नॉलेज*. पेंग्विन, लंदन.
- बोल्बी, जॉन. 1969. *अटैचमेंट एंड लॉस, वॉल्यूम I अटैचमेंट*. बेसिक बुक्स, न्यूयॉर्क.
- बोवुआर, सिमोन द. 2008. *स्त्री के पास खोने के लिए कुछ नहीं है*. संवाद प्रकाशन, मॅरठ.
- भसीन, कमला. 1986. *नारीवाद*. जगोरी, नयी दिल्ली.
- . 2002. *भला ये जेंडर क्या है?*. जगोरी, नयी दिल्ली.
- . 2004. *मर्द, मर्दानगी और मर्दवाद*. जगोरी, नयी दिल्ली.
- . 2004. *एक्सप्लोरिंग मस्कुलिनिटी*. जगोरी, नयी दिल्ली.
- . 2010. *पितृसत्ता क्या है?* जगोरी, नयी दिल्ली.

- मेनन, निवेदिता. 2001. नारीवादी विचारधारा में सेक्स/जेंडर विभेद. आर्य, मेनन और लोकनीता (संपादक). 2001. *नारीवादी राजनीति — संघर्ष एवं मुद्दे*. हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नयी दिल्ली.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. एन.सी.एफ. 2005 नेशनल फ़ोकस ग्रुप ऑन जेंडर इश्यूज इन एजुकेशन. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- . 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- लेमर, गेर्डा. 1986. *दि क्रिएशन ऑफ़ पैट्रिआर्की*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.

उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर ज़िले में स्थित प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन

राजेश कुमार श्रीवास्तव*

प्राथमिक शिक्षा को 1 अप्रैल 2010 से अनिवार्य व निःशुल्क कर दिया गया तथा बेसिक शिक्षा (6-14 वर्ष तक के बालकों को शिक्षा) का दायित्व सरकार को दे दिया गया। लेकिन सरकार, समाज व शिक्षकों की उदासीनता के चलते इस दिशा में ठोस प्रगति नहीं कर पा रही है। आज पर्याप्त विद्यालय खुल जाने के बावजूद तथा सर्व शिक्षा अभियान के तहत अध्यापकों, शिक्षा मित्रों, शिक्षा प्रेरकों एवं अनुदेशकों की नियुक्ति के बाद भी प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति होती दिखाई नहीं दे रही है। निजी स्कूल में विद्यार्थी फ़ीस जमा करते हैं, इसलिए निजी प्रबन्धन विद्यार्थियों को 'उत्पादक' मानता है और इनके विकास के लिए सभी सार्थक कदम उठाने से भी नहीं चूकता है। प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा व्यवस्था विशेषकर उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर ज़िले में स्थित प्राथमिक स्कूल की शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन शोधक द्वारा वर्ष 2016 में किया गया जिसमें ज़िले के सात ब्लॉक के 26 विद्यालयों में जाकर मात्रात्मक एवं गुणात्मक आँकड़े एकत्र किए गए। साथ ही, समाचार-पत्रों से प्राप्त जानकारी के आधार पर तथ्यों का विश्लेषण कर गाज़ीपुर ज़िले की प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था पर गंभीरतापूर्वक चर्चा की गई है जिसे आप इस शोध पत्र में विस्तृत रूप में पढ़ेंगे।

औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के प्रथम स्तर को प्राथमिक शिक्षा स्तर कहा जाता है। बालक-बालिका की आयु 6 या 7 वर्ष होने पर उसकी प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ होती है तथा साधारणतः 14 वर्ष की आयु होने तक चलती है। प्राथमिक शिक्षा स्तर पर बालक-बालिका किसी शिक्षा संस्था में नियमित ढंग से औपचारिक विद्याध्ययन करना प्रारम्भ कर देते हैं। अतः कक्षा 1 से लेकर कक्षा 8 तक की शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा कहा जा सकता है। शिक्षा आयोग

(1964-66) ने कक्षा 1 से कक्षा 5 तक की शिक्षा को निम्न प्राथमिक शिक्षा तथा कक्षा 6 से कक्षा 8 तक की शिक्षा को उच्च प्राथमिक शिक्षा कहा है। अतः निम्न प्राथमिक शिक्षा सामान्यतः 6 से 11 वर्ष के आयु वर्ग के बालकों के लिए होती है, जबकि उच्च प्राथमिक शिक्षा प्रायः 11 से 14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए होती है।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का विचार वस्तुतः मानवतावादी प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था की

देन माना जा सकता है। सभी नागरिकों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने का नारा सबसे पहले 19वीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी देशों में दिया गया। स्वीडन ने सबसे पहले सन् 1842 में अपने यहाँ अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की। इसके उपरान्त सन् 1852 में अमेरिका, सन् 1860 में नार्वे, सन् 1870 में इंग्लैंड तथा सन् 1905 में हंगरी, पुर्तगाल, स्विट्ज़रलैंड आदि ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, विदेशी शासन के कारण यह कार्य भारत में काफ़ी समय तक नहीं हो पाया। यद्यपि कुछ भारतीय व विदेशी शिक्षाविदों ने इस दिशा में प्रयास किए, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। सन् 1882 में दादाभाई नौरोजी ने भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर आयोग) के सामने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य व निःशुल्क बनाने की माँग रखी थी। यद्यपि उनकी इस माँग को स्वीकार नहीं किया गया, परन्तु इस माँग ने भारतवासियों के लिए अनिवार्य निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता की तरफ़ सभी का ध्यान आकर्षित किया। प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की दिशा में प्रथम आंशिक रूप से सफल प्रयास सर इब्राहिम रहीमतुल्ला व सर चिमन लाल सीतलवाड़ का रहा। इन दोनों के प्रयासों के फलस्वरूप बम्बई सरकार ने सन् 1906 में बम्बई में प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता की सम्भावना पर विचार करने के लिए एक समिति का गठन किया। परन्तु दुर्भाग्यवश इस समिति का निर्णय अनिवार्यता के पक्ष में नहीं था। सन् 1906

के बाद भी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए अनेक प्रयास किए गए, लेकिन सफलता नहीं मिली।

सन् 1947 में भारत को ब्रिटिश दासता से स्वतंत्रता प्राप्त हुई। तब स्वतंत्र भारत के संविधान की धारा 45 में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य व निःशुल्क बनाने का संकल्प किया गया। इसमें कहा गया था कि “संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अंदर राज्य अपने क्षेत्र के सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु होने तक निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।”

परन्तु सन् 1950 के संवैधानिक संकल्प, राज्यों के अधिनियमों एवं केंद्र द्वारा घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति व कार्यान्वयन कार्यक्रमों के बावजूद प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने एवं 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक-बालिकाओं को स्कूल भेजने तथा अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका था। सम्भवतः इस विषय स्थिति को देखकर सन् 2002 में 86वें संविधान संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 45 को शैशव-पूर्व देखभाल व शिक्षा तक सीमित करते हुए अनुच्छेद 21 को जोड़कर प्राथमिक शिक्षा को एक मूल अधिकार बना दिया गया। इसके साथ-साथ अनुच्छेद 51क (ट) जोड़कर 6 से 14 वर्ष तक की आयु के पाल्यों के सभी माता-पिता व संरक्षकों के लिए अपने पाल्यों को 6 से 14 वर्ष तक की आयु तक शिक्षा की व्यवस्था करने के दायित्व को नागरिकों का मूल कर्तव्य घोषित कर दिया गया। ज्ञातव्य है कि 73वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायतों तथा नगरपालिकाओं

को शैक्षिक विकास की योजनाओं को तैयार करने व क्रियान्वित करने का अधिकार सौंप दिया गया था। पुनः 1 अप्रैल 2010 का दिन प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक बन गया। भारत में 6 से 14 वर्ष के बालकों/बालिकाओं की शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य कर दी गई। 6 से 14 वर्ष तक के बालकों/बालिकाओं की बेसिक शिक्षा का दायित्व सरकार को दे दिया गया।

अध्ययन की आवश्यकता

भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में प्राथमिक शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा गया है। खासकर प्राथमिक शिक्षा का दायित्व राज्य सरकार का है। केंद्र सरकार समय-समय पर अनुदान देकर इस दिशा में राज्यों का सहयोग करती रही है। लेकिन मुख्य प्रश्न यह है कि क्या राज्य सरकारें पूर्ण ईमानदारी से प्राथमिक शिक्षा का संकल्प निभाने में अपना योगदान दे रही हैं? प्राथमिक शिक्षा बच्चों के जीवन का मूल आधार है। इसके बिना वे आगे की पढ़ाई नहीं कर सकते हैं। अगर बच्चों का आधार कमजोर रहेगा तो आगे बढ़कर वे उच्च शिक्षा में अपना अमूल्य योगदान कैसे दे सकेंगे? अगर इमारत की नींव कमजोर हो जाए तो उसके ऊपर कितना भी बढ़िया निर्माण क्यों न किया जाए, वह एक दिन अवश्य ही गिर जाएगा।

उत्तर प्रदेश का गाजीपुर ज़िला वाराणसी से 80 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस स्थान के प्रमुख दर्शनीय स्थल लॉर्ड कार्नवालिस का मकबरा, एशिया की सबसे बड़ी अफ्रीम फ्रैक्चरी आदि इसी ज़िले में अवस्थित हैं। ज़िले में 1953

प्राथमिक विद्यालय तथा 802 उच्च प्राथमिक विद्यालय संचालित हैं। ज़िले में पाँच तहसील हैं एवं यह 15 विकास खंडों में बँटा हुआ है। ज़िले के प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति ठीक नहीं हैं। प्राथमिक विद्यालयों में सिर्फ़ गरीबों के बच्चे पढ़ते हैं, कहीं-कहीं तो महज़ एक-दो विद्यार्थी ही दिखे। कक्षाओं में आमतौर पर 10-12 विद्यार्थियों की संख्या देखी गई है। अध्यापकगण गाँवों के ग्राम प्रधानों या अन्य नागरिकों से ग्राम के विद्यार्थियों की जानकारी प्राप्त कर उपस्थिति-पंजिका में अंकित कर लेते हैं, जबकि वे बच्चे ग्राम अथवा शहर के किसी अंग्रेज़ी माध्यम स्कूल में पढ़ते हैं। ग्रामों में उत्तर प्रदेश सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के तहत शिक्षा-मित्रों का चयन ग्राम शिक्षा समिति से करवाया है। इन शिक्षामित्रों व ग्राम प्रधानों की मदद से गाँव के हर एक विद्यार्थी की जानकारी प्रधानाध्यापकों को आसानी से प्राप्त हो जाती है। स्कूल की उपस्थिति-पंजिका में जितने विद्यार्थियों के नाम होते हैं, वास्तविकता में वे छात्र वहाँ आते ही नहीं और न ही उनको तथा उनके अभिभावकों को इसकी जानकारी ही होती है।

शोध शीर्षक

“उत्तर प्रदेश के गाजीपुर ज़िले में स्थित प्राथमिक स्कूलों की शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन।”

अध्ययन का उद्देश्य

1. प्राथमिक विद्यालयों के छात्र उपस्थिति का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
2. प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की स्थिति का अध्ययन करना।

3. प्राथमिक विद्यालयों में व्याप्त संसाधनों का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
4. प्राथमिक विद्यालयों में मध्याह्न में दिए जाने वाले आहार का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
5. प्राथमिक विद्यालयों में सर्व शिक्षा अभियान के तहत अध्ययन-अध्यापन हेतु सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
6. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को शिक्षण के अलावा किए जाने वाले कार्यों का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
7. प्राथमिक विद्यालयों में 'नई दिशा कार्यक्रम' से आए परिवर्तनों का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
8. बेसिक शिक्षा विभाग के अधिकारियों तथा ग्राम शिक्षा समितियों का समीक्षात्मक अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

1. प्रस्तुत अध्ययन अवलोकन व साक्षात्कार के आधार पर किया गया है। शोधकर्ता ने 18 ब्लॉकों में से सात ब्लॉकों के 26 विद्यालयों का स्वयं जाकर अध्ययन किया तथा इन विद्यालयों से जुड़े शिक्षकों के साथ साक्षात्कार किया।
2. प्राथमिक शिक्षा के संबंध में संपूर्ण अवलोकन व साक्षात्कार का गहन अध्ययन कर शिक्षा संबंधी विचारों पर चिंतन और चिंतन की आलोचनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की। प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा आज की ज्वलन्त समस्याओं में से एक है, जिसका हल ढूँढ़ा जाना अत्यंत आवश्यक है। प्राथमिक विद्यालयों द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षार्थी कहाँ तक अपना ज्ञान रूपी चक्षु खोलने में सहायक हो पाएगा, इस पर शीघ्र ही विचार करने की ज़रूरत है।

न्यादर्श के लिए चयनित गाज़ीपुर ज़िले के स्कूलों का विवरण

क्र. सं.	विद्यालय का नाम	पंजीकृत छात्र	उपस्थित छात्र	अध्यापक	कक्ष संख्या
ब्लॉक – मनिहारी					
1.	प्राथमिक विद्यालय, मोहनपुर, गाज़ीपुर	39	15	3	3
2.	प्राथमिक विद्यालय, इन्द्रपुरछीड़ी, गाज़ीपुर	90	60	3	4
3.	पूर्व माध्यमिक विद्यालय, इन्द्रपुरछीड़ी, गाज़ीपुर	200	125	8	6
ब्लॉक – जखनियाँ					
1.	प्राथमिक विद्यालय, धर्मागतपुर, गाज़ीपुर	115	100	3	8
2.	प्राथमिक विद्यालय, केसरुआ, गाज़ीपुर	93	70	3	2
ब्लॉक – करण्डा					
1.	प्राथमिक विद्यालय, आकुसपुर, गाज़ीपुर	80	70	4	5
2.	प्राथमिक विद्यालय, ढेलवा, गाज़ीपुर	150	100	5	4
3.	प्राथमिक विद्यालय, करण्डा प्रथम, गाज़ीपुर	100	60	3	7
4.	पूर्व माध्यमिक विद्यालय, करण्डा द्वितीय, गाज़ीपुर	100	80	5	9
5.	प्राथमिक विद्यालय, परमेठ, करण्डा, गाज़ीपुर	70	50	4	4

ब्लॉक – सदर					
1.	प्राथमिक विद्यालय, जंजीरपुर, गाजीपुर	60	40	4	6
2.	प्राथमिक विद्यालय, हुसैनपुर, गाजीपुर	60	15	4	8
3.	प्राथमिक विद्यालय, पुरथा, गाजीपुर	80	60	5	4
4.	प्राथमिक विद्यालय, मड़ऊहाँ, गाजीपुर	50	25	3	5
5.	प्राथमिक विद्यालय, तलाहाबाद, देवकली, गाजीपुर	130	80	4	4
6.	मॉडल जूनियर हाई स्कूल	207	150	4	6
ब्लॉक – जमानियाँ					
1.	आदर्श प्राथमिक विद्यालय, गरूआ मकसूदपुर, गाजीपुर	202	190	4	4
2.	प्राथमिक विद्यालय, भगीरथपुर, गाजीपुर	130	105	5	3
3.	उच्च प्राथमिक विद्यालय, गरूआ मकसूदपुर, गाजीपुर	180	120	10	4
ब्लॉक – रेवतीपुर					
1.	प्राथमिक विद्यालय, रमवल, गाजीपुर	125	60	8	7
2.	प्राथमिक विद्यालय, रमवल जूनियर, गाजीपुर	110	55	3	3
ब्लॉक – बिरनो					
1.	प्राथमिक विद्यालय, भड़सर द्वितीय, गाजीपुर	107	90	6	3
2.	प्राथमिक विद्यालय, भड़सर प्रथम, गाजीपुर	132	100	5	5
3.	उच्च प्राथमिक विद्यालय, बिरनो, गाजीपुर (कक्षा 6-8)	250	200	5	6
4.	प्राथमिक विद्यालय, रजईपुर, गाजीपुर	76	45	3	3
5.	प्राथमिक विद्यालय, पिरथीपुर, गाजीपुर	42	30	3	3

(उपरोक्त तालिका में प्राथमिक विद्यालय को पहली से पाँचवीं कक्षा तक और उच्च प्राथमिक विद्यालय व पूर्व माध्यमिक विद्यालय को छठी से आठवीं तक की कक्षा के तौर पर इंगित किया गया है।)

मुख्य परिणाम

- सरकार ने 100 प्रतिशत उपस्थिति दर्ज करने के लिए कई कदम उठाए हैं। इसके बावजूद प्राथमिक स्कूलों में विद्यार्थियों की उपस्थिति बहुत कम देखने को मिलती है। शोधक ग्रामीण क्षेत्र से संबंध रखता है, जहाँ पर यह पाया गया है कि प्रधानाध्यापक शहरी क्षेत्रों में गए बच्चों अथवा पढ़ने वाले बच्चों का नाम रजिस्टर

में दर्ज करके अपनी व अधिकारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं, लेकिन वास्तविकता में कक्षाओं में काफ़ी कम बालक/ बालिका देखे गए हैं। सरकार ने इस समस्या के समाधान हेतु स्कूल न जाने वाले बच्चों के घरों की दीवार पर रंगीन चॉक से इसकी सूचना दर्ज कराने का फैसला लिया है। इसके लिए शिक्षकों को घर-घर जाकर सर्वे करना होगा। साथ ही

प्रत्येक खण्ड विकास अधिकारी (बी.ई.ओ.) को यह प्रमाण-पत्र भी देना होगा कि उनके क्षेत्र में कक्षा 5 पास करने वाले सभी विद्यार्थियों ने कक्षा 6 में दाखिला ले लिया है। इस सम्बन्ध में शासन ने सभी जिलाधिकारियों को जरूरी निर्देश भेजते हुए उनसे 20 अगस्त, 2016 तक रिपोर्ट माँगी है। प्रदेश में 6-14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा का अधिकार दिया गया है, लेकिन इसके बावजूद बड़ी संख्या में इस उम्र के बच्चे स्कूल से बाहर हैं।

2. अधिकतर स्कूल एक शिक्षक के सहारे चल रहे हैं जबकि कक्षा एक से पाँच तक कम-से-कम पाँच शिक्षक होने चाहिए जो हर एक कक्षा में समयानुसार पढ़ा सकें। लेकिन समाचार-पत्रों से प्राप्त जानकारी व वास्तविकता में यह देखा गया है कि मात्र एक शिक्षक के सहारे स्कूल चलने पर बाध्य हैं। समाचार-पत्र *अमर उजाला* (8 अगस्त, 2016) की खबरों के अनुसार — प्रदेश में जहाँ एक ओर पिछले दो वर्षों में सवा दो लाख शिक्षकों की नियुक्ति की गई है, वहीं करीब 20 हजार बेसिक स्कूल सिर्फ एक-एक शिक्षक के सहारे चल रहे हैं। शासन द्वारा इस पर सख्त रुख अपनाने के बाद निदेशक, बेसिक शिक्षा ने स्थिति में बदलाव लाने के लिए सभी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारियों को हफ्ते भर की मोहलत दी है। उनसे कहा गया है कि जिन स्कूलों में आठ से ज्यादा शिक्षक तैनात हैं, वहाँ से अतिरिक्त शिक्षक हटाकर एकल विद्यालयों में तैनाती का प्रस्ताव 10 अगस्त, 2016 तक बेसिक शिक्षा परिषद् को भेजें। उत्तर प्रदेश में 1 लाख 58 हजार 396 बेसिक स्कूल हैं। शासन ने निर्देश दिए हैं कि कोई भी स्कूल ऐसा नहीं

रहेगा, जिसमें सिर्फ एक शिक्षक तैनात हो। (*अमर उजाला* 4 अगस्त, 2016) शासन द्वारा तैयार की गई एक गोपनीय रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में करीब 20 हजार स्कूलों में सिर्फ एक ही शिक्षक तैनात किया गया है। वहीं, शहरी क्षेत्र से सटे हजारों स्कूलों में आठ से ज्यादा शिक्षकों को तैनात कर दिया गया है।

- कुछ स्कूलों में एक या दो शिक्षकों के रहते हुए भी स्कूलों के ताले नहीं खुलते हैं, कुछ शिक्षक स्कूलों में जाने व पठन-पाठन की जरूरत तक नहीं समझते। मामला प्रकाश में आने पर इस पर कार्यवाही के नाम पर लीपापोती ही होती है। (*अमर उजाला*, 24 जुलाई, 2016) ऐसे ही एक स्कूल का विवरण आगे दिया गया है। यह प्राथमिक विद्यालय सुहवल ग्राम पंचायत भिक्खीचौरा की यादव बस्ती में है। यह प्राथमिक विद्यालय दो वर्षों से बंद पड़ा है। शिकायत सुनते ही जिलाधिकारी काफ़ी नाराज़ हुए और जाँच के आदेश दे दिए। इस स्कूल में 42 विद्यार्थियों का पंजीकरण अभिलेखों में दर्ज है। लेकिन नियुक्त अध्यापक कभी विद्यालय नहीं आते हैं। इसके कारण परिसर में घास उग गई है तथा भवन भी जर्जर होने लगा है। इस सम्बन्ध में जाँच अधिकारियों का कहना था कि इस विद्यालय में 42 छात्र पंजीकृत हैं तथा दो अध्यापक तैनात हैं। इसकी सूचना जिलाधिकारी को दे दी गई है।
3. सरकारी विद्यालयों में भवन, पेयजल, बिजली तथा फ़र्नीचर आदि की भी दुर्दशा ही रहती है। सरकारी स्कूलों में अधिकतम दो-तीन कक्ष ही हैं जिनमें से दो कक्षों का उपयोग पढ़ाई-लिखाई के लिए होता है। बाकी एक कक्ष का प्रयोग स्टॉक

को रखने के काम में आता है। जबकि एक कक्षा को चलाने के लिए एक कक्ष चाहिए अर्थात् पाँच कक्षाओं को संचालित करने के लिए पाँच कक्ष चाहिए। यह समस्या अधिकतर विद्यालयों में है। सुविधाओं के नाम पर कुछ भी नहीं है। अधिकतर स्कूलों में विद्यार्थियों को ज़मीन पर बैठकर पढ़ाई करनी होती है, जबकि निजी स्कूलों में उनके लिए कुर्सी-मेज़ होती है जिससे उनका रुझान उस ओर ज़्यादा रहता है। कहीं-कहीं स्कूल भवन जर्जर हालत में हैं, कभी-कभी ऐसे भवनों के गिरने की सूचना भी मिलती रही है। अमर उजाला (24 जुलाई, 2016) समाचार-पत्र की सूचना के अनुसार, स्थानीय विकास खंड के अन्तर्गत कृतसिंहपुर गाँव में स्थित बेसिक प्राइमरी पाठशाला का भूकंपरोधी बना कमरा शनिवार को दोपहर बाद अचानक भरभराकर गिर पड़ा। संयोग रहा कि इसके कुछ देर पूर्व ही विद्यालय की छुट्टी हुई थी। स्थिति यह रही कि 2002 में बने कुल चार कमरों में से तीन कमरे गिर चुके हैं। जबकि एक की हालत जर्जर बनी हुई है। 2002 में लाखों रुपये की लागत से चार भूकंपरोधी कमरे बनाए गए थे। प्रधानाध्यापक के मुताबिक यहाँ 104 छात्र-छात्राएँ पंजीकृत हैं जिसमें से 61 छात्र-छात्राएँ उपस्थित थे, जो घटना के कुछ देर पूर्व घर चले गए थे। ग्रामीणों ने बताया कि जब विद्यालय भवन 2002 में बन रहा था, उसी समय अनियमितता की शिकायत की गई थी। भवन निर्माण सामग्री घटिया होने के चलते इसकी बार-बार शिकायत की गई। इसके बावजूद विभाग ने उक्त विद्यालय पठन-पाठन शुरू करवाया अर्थात् इन भवनों का निर्माण मानकों के अनुसार नहीं हुआ है।

- प्रोत्साहन योजना के तहत परिषदीय एवं मान्यता-प्राप्त विद्यालयों में विद्यार्थियों को मिलने वाली निःशुल्क पाठ्यपुस्तकों का वितरण तीन महीने बीत जाने के बाद भी अब तक नहीं हो पाया। आगे भी इस माह में पुस्तकों का वितरण होने की उम्मीद नहीं है। शासन स्तर पर इन पुस्तकों के मुद्रण का कार्य भी अभी तक पूरा नहीं कराया जा सका है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी अगले महीने होने वाली सत्र परीक्षा बिना पुस्तकों के ही देने को मजबूर होंगे। वर्तमान शैक्षिक सत्र के करीब तीन महीने पूरे होने जा रहे हैं, लेकिन अभी तक ये पुस्तकें शासन स्तर से ज़िला मुख्यालय को प्राप्त नहीं हो सकी हैं, जबकि प्रत्येक सत्र में पहली सत्र परीक्षा सितम्बर माह में होना निश्चित है। विभागीय सूत्रों का मानना है कि इस बार सत्र परीक्षा तक इन पुस्तकों का वितरण होना सम्भव दिखाई नहीं दे रहा। यह पहला अवसर है, जब तीन महीने निःशुल्क पाठ्यपुस्तकों का वितरण विद्यार्थियों को नहीं हो सका है। ऐसी स्थिति में प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार की बात करना अर्थहीन होगा।
4. 'मिड-डे-मील' शिक्षण और स्वास्थ्य दोनों को कुप्रभावित कर रही है — 'दलिया में कीड़े, मानक के अनुसार भोजन नहीं, अध्यापक पढ़ाने के बजाय खाना बनवाने, बर्तनों की सफ़ाई, खाद्य सामग्री के रख-रखाव आदि में व्यस्त रहते हैं। कभी माप-तौल में घोटाले, कभी निम्न स्तरीय भोजन, कभी प्रधानों, प्रधानाध्यापकों व अन्य कर्मचारियों की बन्दर-बाँट आम बातें हैं।
- स्कूलों में मध्याह्न भोजन योजना के तहत प्रत्येक सोमवार को बच्चों को एक ताज़ा मौसमी

फल देने का आदेश है। अगर किसी सोमवार को छुट्टी रहेगी तो अगले शिक्षण दिवस में फल बाँटे जाएँगे। इस सम्बन्ध में शासनादेश जारी हो चुका है। संक्रमण से बचने के लिए बच्चों को कटे फल न देने के निर्देश भी दिए गए हैं। आदेश में बच्चों को अमरूद, केला, सेब, संतरा, नाशपाती, चीकू और शरीफा जैसे मौसमी फल देने को कहा गया है। एक फल की अनुमानित लागत चार रुपये आंकी गई है। रविवार को छुट्टी के बाद बच्चों को स्कूल आने के प्रति आकर्षित करने के उद्देश्य से फल वितरण का दिन सोमवार चुना गया है। फल वितरण के समय स्कूल प्रबंध समिति के सदस्य भी मौजूद रहेंगे। फल वितरण के लिए वित्तीय स्वीकृति हर साल अप्रैल तथा सितम्बर में जारी की जाएगी।

5. प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक शिक्षा के विद्यालयों में सर्व शिक्षा अभियान के तहत निःशुल्क परिधान बाँटने का प्रावधान है। अक्सर देखने में आता है कि सत्र के मध्य तक भी परिधान का वितरण नहीं हो पाता है। *अमर उजाला* समाचार-पत्र (8 अगस्त, 2016) के अनुसार—जनपद में 1953 परिषदीय प्राथमिक विद्यालय एवं 802 उच्च प्राथमिक विद्यालय संचालित हैं। इन विद्यालयों में करीब दो लाख 65 हजार विद्यार्थी अध्ययनरत हैं। इसके अलावा ज़िले में मान्यता प्राप्त एवं शासन द्वारा वित्त सहायता प्राप्त विद्यालयों की संख्या भी लगभग एक हजार है। कस्तूरबा गाँधी आवासीय विद्यालयों की संख्या 14 है और हाई स्कूलों और इन्टर कॉलेजों के साथ संबद्ध जूनियर हाई स्कूलों की संख्या सवा सौ के करीब है। इन विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की

संख्या करीब 85 हजार है। इस तरह ज़िले में एक से आठ तक की कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या करीब तीन लाख 48 हजार 356 है। निःशुल्क परिधान वितरण करने की व्यवस्था सरकार की ओर से की गई है। इस व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक बच्चे को दो सेट परिधान उपलब्ध कराए जाते हैं। सरकार की ओर से परिधान के लिए ज़िले को 10 करोड़ 25 लाख की धनराशि बेसिक शिक्षा विभाग को उपलब्ध करा दी गई है, लेकिन अभी तक बच्चों को निःशुल्क परिधान का वितरण नहीं किया गया है।

6. प्राथमिक शिक्षा के अध्यापकों से शिक्षण के अलावा अतिरिक्त कार्य लिया जाता है जिससे वे अपना कार्य पूर्ण ईमानदारी से नहीं निभा पाते। ये अतिरिक्त कार्य अग्रलिखित हैं —

(i) जनगणना, (ii) बाल श्रमिक गणना, (iii) कुष्ठ एवं विकलांग गणना, (iv) वोटर लिस्ट बनाना, (v) वोटर लिस्ट सत्यापन एवं संशोधन, (vi) पहचान पत्र बनवाना, (vii) पोलियों ड्यूटी, (viii) चुनाव ड्यूटी, (ix) संघीय चुनाव व सरकारी अवकाश, (x) महिला अध्यापिकाओं को 60 प्रतिशत प्रसूति अवकाश। इसके अलावा शिक्षा-मित्रों को उन्हीं के ग्राम में नियुक्त किया जाता है, जिससे वे विद्यालय में न रहकर अपने घर के कार्यों में लिप्त रहते हैं।

7. नई दिशा कार्यक्रम के अन्तर्गत ज़िलाधिकारी ने बेसिक शिक्षा विभाग के अधिकारियों संग बैठक कर विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता पर अपेक्षित सुधार एवं एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर के डाउनलोड से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया। ज़िलाधिकारी ने कहा कि ज़िला स्तर पर

सॉफ्टवेयर 'नई दिशा' तैयार किया गया है। इसके माध्यम से स्कूलों में हो रहे कार्यों की जानकारी प्राप्त होगी। शिक्षकों के अवकाश से सम्बन्धित शिकायतों का समाधान भी होगा। यह सॉफ्टवेयर एन्ड्रॉयड फ़ोन में डाउनलोड किया जा सकता है। एक ही एन्ड्रॉयड फ़ोन से विद्यालय के सभी शिक्षकों का पंजीकरण सम्भव है। इसकी ओपन एक्टीविटी में पाँच तरह के क्रियाकलाप पर कार्य किया जा सकता है। इसमें खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रम, पी.टी.योग, स्वच्छता, अभिभावक-संपर्क आदि शामिल हैं। एक क्रियाकलाप पर स्कूलों को दो अंक प्राप्त होंगे। इसी प्रकार, मासिक क्रियाकलाप के तहत विद्यार्थियों के जन्मदिन, जयंती समारोह या अन्य कोई समारोह आयोजन होने के उपरान्त फ़ोटो आदि अपलोड करने की सुविधा होगी। बैठक में ज़िलाधिकारी संजय कुमार खत्री ने सभी शिक्षकों से स्कूलों के शैक्षणिक स्तर में सुधार की अपेक्षा की। बैठक में ज़िला एवं ब्लॉक स्तर के सभी शिक्षा अधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित थे।

उपरोक्त कार्यक्रम 'नई दिशा' ने शिक्षकों को नियमित व समय से स्कूल आने के लिए बाध्य किया। साथ-ही-साथ अध्यापकों के बिना छुट्टी की अर्जी दिए गायब होने तथा अगले दिन उपस्थित होकर उपस्थिति-पंजिका पर हस्ताक्षर करने जैसे क्रियाकलाप पर निश्चित ही नियंत्रण पाया जा सका। स्कूलों द्वारा अधिक नम्बर पाने की लालसा में ज़्यादा से ज़्यादा क्रियाकलाप करवाकर फ़ोटो अपलोड किए गए। इन क्रियाकलापों के अंक भी बेसिक शिक्षा

अधिकारियों द्वारा बेसिक शिक्षा की वेबसाइट पर अपलोड किए गए, जिन्हें ब्लॉकवार तालिका 1 में दर्शाया गया है —

तालिका — 1

क्र. सं.	ब्लाक का नाम	अंक
1.	मोहम्मदाबाद	2030
2.	जखनियाँ	1860
3.	सैदपुर	1806
4.	बिरनों	1802
5.	मरदह	1578
6.	मनिहारी	1572
7.	बाराचवर	1400
8.	भदौरा	1366
9.	देवकली	1342
10.	गाजीपुर सदर	1270
11.	सादात	968
12.	कासिमाबाद	758
13.	जमानियाँ	710
14.	करणडा	614
15.	भावरकोल	465
16.	रेवतीपुर	460
17.	नगर क्षेत्र	156

'नई दिशा' कार्यक्रम लागू होने से उपस्थिति में तो सुधार हुआ, लेकिन शिक्षा का स्तर जस-का-तस बना हुआ है। यह तभी सुधार सकता है जब अध्यापक एवं अभिभावक शिक्षा के प्रति जागरूक हों। अध्यापकों से वार्ता करने पर पता चला कि रबी व खरीफ़ की फ़सलों की बुआई-जुताई व कटाई के समय अधिकांश विद्यार्थी स्कूल नहीं आते जिससे पढ़ाई में विघ्न पड़ता है। कुछ प्राथमिक अध्यापकों ने मध्याह्न भोजन योजना को भी ज़िम्मेदार ठहराया। उनके अनुसार, उनका काफ़ी ज़्यादा समय मध्याह्न भोजन बनवाने व

खिलाने में खर्च हो जाता है, जिसकी वजह से पढ़ाई बाधित होती है। अभिभावक-अध्यापक संपर्क पंजिका भी प्राथमिक विद्यालयों में मौजूद है, जिसमें अध्यापक अभिभावकों से मिलकर यह दर्ज करते हैं कि उनका बच्चा स्कूल क्यों नहीं आया? अधिकतर समय इन सभी कागजी कार्यवाही में खर्च हो जाता है, जिसके कारण शिक्षक कार्य प्रभावित होता है।

8. बेसिक शिक्षा विभाग के अधिकारियों की भी यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वे विभिन्न प्रकार के भ्रष्टाचार से दूर रहें। अध्यापकों की गलतियाँ पाए जाने पर तुरन्त कार्यवाही करें। ऐसा न करने के कारण ही शिक्षा के स्तर में सुधार नहीं हो पाता है। आए दिन मसले समाचार-पत्रों में उजागर होते रहते हैं।

ग्राम शिक्षा समिति में ग्राम पंचायत का प्रधान अध्यक्ष होता है। ग्राम पंचायत के अन्तर्गत आने वाले बेसिक स्कूलों के विद्यार्थियों के तीन अभिभावक (जिसमें एक महिला होनी आवश्यक है) जो सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा नामित होते हैं, सदस्य होते हैं। ग्राम पंचायत के अन्तर्गत आने वाले बेसिक स्कूल का ज्येष्ठतम प्रधानाध्यापक सचिव होता है। ग्राम शिक्षा समिति का गठन इस उद्देश्य से किया गया ताकि जन-समुदाय का अपेक्षित सहयोग इन विद्यालयों को मिल सके। लेकिन ग्राम प्रधानों व प्रधानाध्यापकों की नीरसता व 'ताल-मेल' के चलते ये विद्यालय शिक्षा व संसाधन बढ़ोत्तरी के क्षेत्र में अपेक्षित उन्नति नहीं कर पा रहे हैं। कभी-कभी ग्राम प्रधान व प्रधानाध्यापक के भ्रष्ट व्यवहार के चलते विद्यालय भवन का निर्माण भी घटिया सामग्री

से कराए जाने के कारण भवन अधिक टिकाऊ नहीं बन पाते हैं तथा दुर्घटना की आशंका बनी रहती है।

निष्कर्ष

सरकार बेसिक शिक्षा स्कूलों पर काफ़ी धन खर्च कर रही है, लेकिन इसका कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल रहा। एक अनुमान के अनुसार प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को औसतन चालीस हजार रुपये प्रति माह वेतन दिया जाता है। इसके लिए उन्हें विद्यालय में लगभग दस बच्चों को पढ़ाना होता है। अध्यापक विभिन्न समस्याओं के चलते उन विद्यार्थियों को भी अपना पूरा समय नहीं दे पाते। इन समस्याओं में शामिल हैं — विद्यार्थियों का नियमित तौर पर विद्यालय न पहुँचना, अभिभावकों का शिक्षा के मूल्य को न समझना, विद्यार्थियों का विद्यालय के प्रति आकर्षण कम होना, समय पर विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तकों, स्कूल बैग आदि सुविधाएँ न मिलना, विद्यालय में संसाधनों, जैसे — सहायक सामग्री, कुर्सी-मेज का न होना, अध्यापकों का अपने कार्य के प्रति जागरूक होना, मध्याह्न भोजन में पौष्टिकता का अभाव इत्यादि।

कुछ अध्यापक, जो अध्यापन-अभिक्षमता परीक्षण पास करके प्राथमिक शिक्षक बने हैं, वे अंग्रेज़ी माध्यम स्कूल छोड़कर बेसिक स्कूलों में कार्यरत हैं। उनका कहना है कि उन्हें कार्य-सन्तुष्टि नहीं मिलती। वे अगर कार्य करना भी चाहते हैं तो तीसरी कक्षा के बच्चों को अक्षरों का ज्ञान कराना होता है, जिसके कारण वे विच्छिन्न होते हैं। वे भी शिक्षण सुविधाओं के बेसिक विद्यालयों में न होने से परेशान हैं।

इन सब समस्याओं से निजात पाने के लिए यह अति आवश्यक है कि बेसिक शिक्षा विभाग स्कूलों की शिक्षण सामग्री को विकसित करे। साथ-ही-साथ अभिभावकों में जागरूकता का भाव भी पैदा करे, प्रत्येक विद्यालय के क्रियाकलाप की जानकारी अभिभावकों को दी जाए, अध्यापक अपने कार्य के प्रति सजग रहें, बेसिक शिक्षा अधिकारियों द्वारा विद्यालयों का समय-समय पर निरीक्षण किया जाए, बेसिक शिक्षा विभाग निजी विद्यालयों की तरह विद्यार्थियों के लिए कुर्सी-मेज़ की व्यवस्था करे, कक्षा-कक्ष प्रत्येक कक्षा के हिसाब से हो।

कुछ विद्यालय की ग्राम शिक्षा समितियों की जागरूकता के चलते शिक्षण स्तर में सुधार देखा गया है। प्राथमिक विद्यालय, सोठरा, मरदह निजी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय की तर्ज पर ग्राम शिक्षा समिति द्वारा विकसित किया गया है। इसमें ढाई सौ छात्र/छात्राएँ शिक्षा ग्रहण करते हैं। बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा शिक्षक उपलब्ध नहीं कराने पर यहाँ के ग्राम प्रधान व प्रधानाध्यापक समग्र रूप से मिलकर निजी

शिक्षक उपलब्ध करवाकर विद्यार्थियों को शिक्षित करने का कार्य करते हैं जिसके लिए ज़िलाधिकारी द्वारा प्रोत्साहन प्रमाण-पत्र भी प्रदान किया गया है।

शिक्षकों को मध्याह्न भोजन योजना से दूर रखना, उन्हें चुनाव, पल्स पोलियो ड्यूटी आदि में तैनात न करना भी शिक्षा के स्तर को बढ़ा सकता है।

बेसिक शिक्षा विभाग के कर्मचारी व अधिकारी अपने कार्य के प्रति सजगता लाएँ तो भी इस दिशा में सुधार हो सकता है। ग्राम शिक्षा समिति के सहयोग से प्राथमिक विद्यालयों में चार-चाँद लग सकते हैं व शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित प्रगति देखी जा सकती है। ग्राम शिक्षा समिति में साक्षर अभिभावकों को सदस्य के रूप में नामित भी किया जा सकता है, जिससे शिक्षा क्षेत्र में अपेक्षित सफलता मिल सकती है।

सरकार नये विद्यालय खोलने में धन बर्बाद न करते हुए इन्हीं विद्यालयों में आवश्यक शिक्षण-सामग्री की व्यवस्था करे, कक्षा-कक्ष का निर्माण करवाए, विद्यालय में बालक-बालिकाओं के लिए अलग-अलग प्रसाधन की व्यवस्था करे तो शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार संभव है।

संदर्भ

- गुप्ता, एस.पी. और अलका गुप्ता. 2010. *भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ*. (संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण), शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.
- देवीस्वरूप. 2011. अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा. *विद्या मेघ, करेण्ट अफेयर्स*. विद्या प्रकाशन मंदिर (प्रा.) लि., मेरठ.
- ‘नई दिशा’ से आप जानेंगे स्कूलों की हर गतिविधि. 21 जुलाई, 2016 को www.gazipur.nic.in से लिया गया.
- शर्मा, आर.ए. 2010. *अध्यापक शिक्षा*. सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ.
- शर्मा, आर.ए. और शिखा चतुर्वेदी. 2011. *अध्यापक शिक्षा*. इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ.
- सिंह, ओंकार. 2010. प्राथमिक शिक्षा में ग्राम शिक्षा समिति की भूमिका. *विद्या मेघ, करेण्ट अफेयर्स*. विद्या प्रकाशन मंदिर (प्रा.) लि., मेरठ.

अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों के लिए शैक्षिक अवसर

हर्षवर्धन कुमार*

यह शोध पत्र अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के संघर्ष के बीच उनके बच्चों की शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को समझने के प्रयास का हिस्सा है। इस शोध अध्ययन में वैसे असंगठित कोयला मजदूरों के बच्चों की शिक्षा को केंद्र में रखा गया है, जिनकी आजीविका को राज्य तथा राज्य की विभिन्न संस्थाओं द्वारा अवैध के रूप में चिह्नित किया जाता है। इस शोध अध्ययन में इस बात को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है कि समाज में आर्थिक एवं सामाजिक रूप से हाशिये पर मौजूद परिवारों के बच्चों के लिए चुनौतियाँ कहीं अधिक बढ़ जाती हैं जब उनके माता-पिता की आजीविका की पहचान अवैध अथवा एक गैर-कानूनी कार्य के रूप में की जाती है। इस शोध पत्र में ऐसे मजदूरों के बच्चों के शैक्षिक अवसरों को समझने के लिए झारखंड के रामगढ़ ज़िले के कोयला खनन क्षेत्र के अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों के लिए उपलब्ध शैक्षिक अवसरों एवं विद्यालयों के अवलोकन के माध्यम से वास्तविक परिस्थिति को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

पृष्ठभूमि

भारत में अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों की परिस्थितियों को समझने से पूर्व कोयला खनन से जुड़े प्रमुख तथ्यों के संबंध में चर्चा आवश्यक है। झारखंड अपनी समृद्ध खनिज संपदा के लिए जाना जाता है, जिसमें राज्य में कोयले का प्रचुर भंडार भी शामिल है। कोयला मंत्रालय के आँकड़े यह बताते हैं कि देश में (01.04.2014 की स्थिति के अनुसार) कोयले के भंडार के मामले में झारखंड राज्य सर्वोपरि है।

भारत जैसे विकासशील देशों में आज भी खनिजों की प्राप्ति के लिए किया जाने वाला खनन अधिकांशतः मानव श्रम पर निर्भर करता है। असंगठित क्षेत्र के द्वारा किए जाने वाले खनन में तो मशीनों का उपयोग नगण्य है। सस्ती मजदूरी दर के मजदूरों का उपयोग न केवल लागत को कम करता है, अपितु निवेश की दृष्टि से अधिक लाभप्रद भी है। इसका मूल कारण खनन के अत्याधुनिक तरीकों के उपयोग में हुई प्रगति का अत्यन्त सीमित होना है। बेरोजगारी की समस्या लगातार पहले से अधिक

भयावह होती जा रही है। ऐसे में खदानों में काम करने के लिए मजदूरों की कोई कमी नहीं है। कोयला खदानों में मजदूरी को रोजगार के एक विकल्प के रूप में देखने वाले लोगों के लिए यह बात परिस्थितियों को और मुश्किल बना देती है। कोयला खदानों के आस-पास के इलाकों में ऐसे कई परिवार हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कोयले के खनन से जुड़े रोजगार पर निर्भर हैं। इनमें ही शामिल हैं वे मजदूर जो खदानों से कोयला निकालकर स्थानीय बाजारों में बेचकर अपनी आजीविका चलाते हैं। कोयले को राष्ट्रीय संपदा घोषित किए जाने के कारण इस प्रकार किए जाने वाले खनन को अवैध कोयला खनन कहा जाता है।

झारखंड में वैध तथा अवैध कोयला खनन

कोयले के खनन के मामले में अनधिकृत खनन को अवैध खनन के रूप में पहचाना गया है तथा कई सरकारी तथा गैर-सरकारी दस्तावेजों में इसका उल्लेख भी मिलता है। देश में होने वाले खनिजों के अवैध खनन के उल्लेख के लिए किसी एक मानक शब्द का उपयोग नहीं होता है। कोयले के अवैध खनन के विषय में भी ऐसा ही है। इसके लिए अवैध खनन के अतिरिक्त गैर-कानूनी खनन, कोयले की चोरी तथा अनधिकृत खनन जैसे शब्दों का उपयोग किया जाना पाया गया है। उदाहरण के लिए, 'उज्ज्वल भारत के 3 वर्ष' शीर्षक से ऑनलाइन उपलब्ध पत्रिका में न केवल अवैध खनन का जिक्र किया गया है, अपितु अवैध अर्थात् गैर-कानूनी खनन रोकने के लिए खनन निगरानी प्रणाली (एम.एस.एस.) के विषय में भी बताया गया है।

झारखण्ड में भी अन्य राज्यों की तरह ही अवैध खनन के संबंध में जो आँकड़े उपलब्ध हैं, वे मूलतः अनुमानों पर आधारित हैं। यदि कार्य की प्रकृति के आधार पर वैध तथा अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के वर्गीकरण पर चर्चा की जाए तो यहाँ यह समझना भी ज़रूरी है कि वैसे तो सभी अवैध कोयला मजदूर भी असंगठित कोयला मजदूरों की श्रेणी में आते हैं, परंतु सभी असंगठित कोयला मजदूर अवैध कोयला मजदूर नहीं हैं। असंगठित कोयला मजदूर कोयला माफिया के द्वारा भी काम पर लगाए गए हो सकते हैं और किसी बड़ी कम्पनी के लिए काम कर रही छोटी कम्पनी अथवा किसी कम्पनी के ठेकेदार के लिए काम कर रहे भी हो सकते हैं।

स्वरोजगार के रूप में कोयला खनन कर बेचने वाले मजदूरों के सामाजिक-आर्थिक तथा भौगोलिक पृष्ठभूमि में भिन्नता है। इस प्रकार से कोयला खनन करने वाले मजदूरों में ऐसे मजदूर भी हैं जो पीढ़ियों से कोयला खदान वाले इलाकों में रह रहे हैं। वहीं, मजदूरों का एक ऐसा वर्ग भी इन क्षेत्रों में रहकर कोयला निकालने और बेचने का कार्य कर रहा है जो पिछले कुछ वर्षों से इन क्षेत्रों में आकर बसा है। स्थानीय रूप से कोयला खदानों के निकट रहकर कोयला निकालकर बेचने वाले इन दो प्रकार के मजदूरों के अतिरिक्त एक अन्य मजदूर वर्ग भी है जो इन क्षेत्रों में नहीं रहता, परंतु अपनी आजीविका के लिए कोयले के अवैध खनन पर ही निर्भर है। ये मजदूर विभिन्न स्थानों से अपनी साइकिल लेकर यहाँ की कोयला खदानों तक आते हैं और निकाले गए कोयले को अपनी साइकिल पर

लादकर, सड़क पर ठेलते हुए ले जाते हैं। इन्हें कुछ संदर्भ साहित्य में ‘कोल साइकिल वालास्’ अर्थात् ‘साइकिल पर कोयला ले जाने वाले’ भी कहा गया है (लहरी-दत्त, 2005, रानडॉल्फ, 2011. बांग और सिंह, 2013)। साइकिल पर ऐसे कई मन कोयला लादकर उसे धकेलते हुए मजदूर झारखण्ड के लगभग सभी कोयला खनन क्षेत्रों के आस-पास के इलाकों में देखे जा सकते हैं।

खनन प्रभावित क्षेत्रों में स्थानीय लोगों का विस्थापन और संघर्ष

‘कोयला झारखंड का सबसे बड़ा खनिज उद्योग है। 1971 में राष्ट्रीयकरण से पूर्व कोयले का खनन निजी खान मालिकों के द्वारा अव्यवस्थित तरीके से किया जाता था। राष्ट्रीयकरण के बाद क्षेत्र का संपूर्ण कोयला उद्योग कोल इंडिया लिमिटेड (सी.आई.एल.) तथा इसकी सहायक कंपनियों (टिस्को और इस्को के नियंत्रण वाली कुछ खदानों को छोड़कर) को सौंप दिया गया’ (अरीपरंपिल, 1996, पृ. 1524)। यह एक ऐसा कदम था जिसने राज्य में कोयला खनन उद्योग को बदलकर रख दिया। देखा जाए तो कोयले का खनन बड़े पैमाने पर प्रारंभ होने से आस-पास के लोगों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। लहरी-दत्त (1997) यह तथ्य सामने लाती हैं कि ‘रानीगंज में कोयले के अत्यधिक खनन ने न केवल समुदायों को विस्थापित किया, बल्कि स्थानीय लोगों की जीवन शैली को भी प्रभावित किया।’ उन्होंने पर्यावरण पर खनन के अपघटनकारी प्रभावों की ओर संसार भर के विशेषज्ञों का ध्यान आकर्षित होने के बावजूद,

इन क्षेत्रों के समुदायों तथा अर्थव्यवस्थाओं पर खनन के प्रभावों के उनके द्वारा ध्यान नहीं दिए जाने का भी उल्लेख किया।

इस प्रभाव से कोयला खदानों में रोजगार पाने वाले तथा इससे वंचित रह जाने वाले, सभी के जीवन में बदलाव आए। मगर जिन्हें खदानों में कोई काम नहीं मिल पाया और जिनके रोजगार के पारंपरिक साधनों पर खनन के विस्तार ने नकारात्मक प्रभाव डाला, उनके लिए विस्थापन अथवा वहीं रहकर अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्ष करना, ये दो ही विकल्प थे। ऐसे में उन्होंने वहीं रहकर अपने अधिकार क्षेत्र की ज़मीन के नीचे के कोयले का अवैध खनन कर उसे बेचना आरंभ किया। ऐसे ही सैकड़ों परिवार, वर्षों से इन इलाकों में रहकर अपने अस्तित्व के संघर्ष को आगे बढ़ाते जा रहे हैं। परंतु यह विकल्प भी बहुत चुनौतीपूर्ण है।

बिना प्रशिक्षण तथा उपयुक्त सुरक्षा उपकरणों के कोयला खदानों के भीतर जाकर कोयला निकालना हर बार जीवन को जोखिम में डालने वाला होता है। ऐसे में किसी भी प्रकार की दुर्घटना हो सकती है तथा दुर्घटना की स्थिति में व्यक्ति के साथ-साथ पूरे परिवार को मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। अवैध खनन के दौरान होने वाली कोयला खदान दुर्घटनाओं के संबंध में कई बार मीडिया द्वारा खबरें प्रकाशित भी होती हैं। ऐसी ही एक खबर में झारखंड के गिरिडीह ज़िले में अवैध कोयला खदान के धंसने से पाँच लोगों की मृत्यु हो जाने तथा 20 अन्य के घायल होने का दावा किया गया (कुमार, 2017)। रानडॉल्फ (2011)

अवैध कोयला खदानों में होने वाली दुर्घटनाओं तथा उनमें होने वाली मौतों के विषय में यह दावा करते हैं कि 'जब ऐसी दुर्घटनाएँ होती हैं, स्थानीय लोग लाश को लेकर भाग जाते हैं, जिससे कि किसी प्रकार की छानबीन न की जा सके।' अख्तर (2017) यह बताते हैं कि 'कई अवसरों पर, अवैध खदानों में मौतें बिना दर्ज हुए रह जाती हैं।'

यह सहज ही समझा जा सकता है कि उनके पास अन्य विकल्प कितने सीमित तथा अपर्याप्त रहे होंगे। यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसी परिस्थितियों में घिरे लोग वे ही होंगे जो उन क्षेत्रों में रहने वाले वंचित तबकों के होंगे।

यह शोध पत्र ऐसे ही अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों के लिए उपलब्ध शैक्षिक अवसरों के विषय में पड़ताल करता है जो इन कोयला खनन क्षेत्रों में पिछले कई दशकों से रह रहे हैं तथा वर्तमान में आजीविका के लिए कोयले के अवैध खनन पर निर्भर हैं।

शोध प्रक्रिया

इस शोध अध्ययन के लिए सर्वप्रथम कोयला खनन क्षेत्रों तथा आस-पास की बस्तियों में जाकर ऐसे कोयला मजदूरों का पता लगाया गया जो कोयले के अवैध खनन द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। इसके बाद उन कोयला मजदूरों से अनौपचारिक बातचीत के माध्यम से उन विद्यालयों के बारे में पता लगाया गया, जहाँ उनके बच्चे विद्यालयी शिक्षा प्राप्त करते हैं। इसके बाद उस क्षेत्र में मौजूद दो राजकीय उद्गम (अद्यनीकृत) मध्य विद्यालयों का चयन इस शोध के लिए किया गया।

दोनों विद्यालयों के शिक्षकों से हुई समूह चर्चाओं से यह स्पष्ट हुआ कि इन दोनों विद्यालयों में पढ़ने वाले अधिकांश बच्चों के माता-पिता अवैध कोयला मजदूर के रूप में कार्य करते हैं। सर्वप्रथम इन दोनों विद्यालयों की आधारभूत संरचना तथा नामांकन आदि से संबंधित सूचनाओं को एकत्र किया गया। इसके बाद पुनः दोनों विद्यालयों के शिक्षकों तथा विद्यालय में नामांकित कोयला मजदूरों के बच्चों के साथ शोधक द्वारा तैयार की गई असंरचित साक्षात्कार प्रश्नावली के आधार पर विस्तृत बातचीत की गई। सभी प्रक्रियाओं को निम्नलिखित प्रश्नों के संदर्भ में देखने का प्रयास किया गया —

- कोयले का अवैध खनन करने वाले मजदूरों के बच्चे जिन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, उनकी वर्तमान स्थिति क्या है?
- उपलब्ध शैक्षिक अवसर कोयले का अवैध खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों के शैक्षिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए कितने तैयार हैं?
- कोयले का अवैध खनन करने वाले मजदूरों की अपने बच्चों की शिक्षा के संबंध में क्या अपेक्षाएँ हैं?
- कोयले का अवैध खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों की अपनी शिक्षा से जुड़ी क्या आकांक्षाएँ हैं?

चयनित दोनों विद्यालय एक ही संकुल का अंग हैं। इसे ध्यान में रखते हुए दोनों विद्यालयों से जुड़े संसाधन सेवी से भी असंरचित साक्षात्कार प्रश्नावली के आधार पर चर्चा की गई।

अवैध कोयला खनन से जुड़े परिवारों के बच्चे

सर्वप्रथम यहाँ पर यह समझना जरूरी है कि क्या अवैध कोयला खनन करने वाले मजदूरों के काम की प्रकृति का उनके बच्चों के जीवन पर भी कोई प्रभाव पड़ता है? क्या उनके वर्तमान तथा भविष्य को बेहतर बनाए जाने के अवसरों को सुरक्षित करने के दायित्व के प्रति विद्यालय जैसी संस्थाओं की भूमिका सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है?

यद्यपि शिक्षा की सीमाओं तथा क्षमताओं पर विवाद संभव है, परंतु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि शिक्षा हमारे जीवन को कई सकारात्मक अर्थों में प्रभावित करती है। यह संभावनाओं के नए द्वार अवश्य खोलती है। यह कहा जा सकता है कि शिक्षा एक व्यक्ति को 'जीने तथा वातावरण के साथ सामंजस्य के लिए तैयार और विकसित करती है जिससे कि वह व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को सफलतापूर्वक जी सके।' (रवि, 2016, पृ. 3)

ऐसे ही वर्ग भेद से हर व्यक्ति के जीवन के प्रभावित होने को भी वास्तविक माना गया है। समाज में हाशिये पर मौजूद लोगों के लिए संसाधनों तथा अवसरों तक पहुँच अन्य वर्गों की तुलना में कठिन होती है। यह वक्तव्य शिक्षा के अवसरों के लिए भी अपवाद नहीं है। ऐसे में कोयला मजदूरों के जीवन के आर्थिक-सामाजिक ताने-बाने को समझकर ही उन परिस्थितियों को समझा जा सकता है, जिसके बीच उनके परिवार के सदस्य प्रतिदिन के संघर्ष के बीच अपने जीवन को बेहतर बनाने वाले अवसरों तक पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं।

वंचित परिवारों के बच्चों की शिक्षा

सैद्धांतिक रूप से देखा जाए तो विभिन्न परिवारों के लिए वंचना के कारण भिन्न हो सकते हैं। कोई परिवार आर्थिक आधार पर वंचित हो सकता है तो कोई सामाजिक आधार पर। परंतु यह देखा गया है कि अक्सर वंचित परिवार की स्थितियों के लिए आर्थिक, सामाजिक आदि सभी आधारों की मिली-जुली भूमिका होती है। वंचना से जुड़ी उनकी यह स्थिति, जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा किए जाने के मार्ग में एक बड़े अवरोध के रूप में उपस्थित होती है। आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि वाले परिवारों के लिए भोजन, आवास जैसी बुनियादी जरूरतों की पूर्ति भी एक बड़ी चुनौती होती है। ऐसे परिवारों में वयस्कों के प्रयासों का पहला और सबसे बड़ा लक्ष्य होता है स्वयं तथा परिवार के अस्तित्व को बचाए रखना। ऐसे में उनके लिए परिवार के बच्चों को बेहतर भविष्य प्रदान करना एक बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। इसकी शुरुआत वे बच्चों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने से करते हैं। शिक्षा के अवसरों से जुड़े कई प्रश्न हैं जिनका उत्तर उन विद्यालयों तक ही पहुँचकर मिलेगा जिनमें वंचित वर्ग के परिवारों के बच्चों को शिक्षा मिल सकती है।

अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के परिवारों के बच्चों की शिक्षा

वंचित परिवारों के बच्चों की शिक्षा से जुड़ी उपरोक्त चर्चा अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों की शिक्षा के संबंध में भी प्रासंगिक है। परंतु अवैध रूप से कोयला खनन

करने वाले मजदूरों के परिवारों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष रूप से चर्चा करने के पूर्व हमें अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के जीवन के विषय में अपनी समझ को अन्य वंचित परिवारों के साथ तुलनात्मक रूप से समानता एवं विशिष्टता के आधार पर देखना होगा। अध्याय में पहले ही उनके जीवन को कहीं अधिक गहराई से जानने के उद्देश्य से विस्तृत चर्चाओं को स्थान दिया गया है। यहाँ उनकी सामाजिक परिस्थिति से जुड़े ऐसे कई प्रश्न हैं जिनके उत्तर तलाशना आवश्यक है, क्योंकि किसी भी परिवार की स्थिति का सबसे अधिक प्रभाव परिवार के बच्चों पर पड़ता है।

विद्यालय शैक्षिक अवसरों को एक आधार प्रदान करता है। यहाँ यह समझना ज़रूरी है कि कैसे कोई विद्यालय विशेष अपने विद्यार्थियों को भविष्य के लिए तैयार करने की दिशा में कार्य करता है। इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखना होगा कि किसी भी विद्यालय व्यवस्था से हमारी कुछ सामान्य अपेक्षाएँ तो अवश्य होती हैं। ये अपेक्षाएँ अधिगमकर्ता को एक बेहतर भविष्य के प्रति आश्वस्त करने से संबंधित हैं।

यदि किसी विशेष पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए कोई विशेष विद्यालय कार्य कर रहा हो, तब वह परिस्थिति भिन्न हो सकती है, परंतु एक सामान्य विद्यालय में किसी विशेष पृष्ठभूमि के बच्चे नामांकित हों तो यह देखना आवश्यक हो जाता है कि विद्यालय की प्रक्रियाओं में उन विशेष पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए क्या संभावनाएँ हैं। कोलमैन (1991) विद्यालय द्वारा अलग पृष्ठभूमि

के बच्चों के लिए अलग प्रकार की गतिविधियों के किए जाने की आवश्यकता पर बल देते हैं। अवसर की समानता स्थापित करने के संबंध में उनका तर्क यह है कि 'उन्हें (विद्यालयों को) अलग पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए अवश्य ही चीज़ें करनी चाहिए। इसका आशय यह है कि विद्यालय की शिक्षा के माध्यम से अवसर की समानता लाने के लिए इन परिस्थितियों में अलग-अलग शैक्षिक नीतियों की आवश्यकता है। यह कार्य उससे कहीं कम सरल है जितना की यह प्रतीत होता है, क्योंकि पारिवारिक पृष्ठभूमि जितने प्रकार से भिन्न होती है, वह समग्र रूप से सरल नहीं है।'

हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उन विद्यालयों को बेहतर ढंग से जानने और समझने का प्रयास करें, जो अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने का कार्य कर रहे हैं। स्पष्ट है कि ये ऐसे विद्यालय नहीं हैं जो कि, कोयला मजदूरों के बच्चों के लिए ही बनाए गए हों, बल्कि ये उन क्षेत्रों में मौजूद विद्यालय हैं, जहाँ कोयला मजदूरों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के लिए पहुँचते हैं। इन विद्यालयों के संबंध में सूचनाएँ प्राप्त कर तथा अवलोकन आदि के माध्यम से पता लगाना भी ज़रूरी है कि इन विद्यालयों की वर्तमान स्थिति कैसी है तथा इन विद्यालयों में उपलब्ध तथा अनुपलब्ध आवश्यक संसाधन कौन-कौन से हैं? निस्संदेह यह चर्चा केवल भौतिक संसाधनों तक ही सीमित नहीं है, अपितु इसका विस्तार विद्यालय के भौतिक संसाधनों से लेकर विद्यालय से जुड़े मानव संसाधन तक है।

यद्यपि इस शोध के संबंध में परिवार के बाहर की जिस संस्था को प्रमुखता दी गई है, वह है विद्यालया। यह कहा जा सकता है कि शोध में इस विषय पर चर्चा प्रारंभ करते हुए यह स्पष्टता होनी आवश्यक है। यहाँ विद्यालय की भूमिका को केवल बच्चों के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के साथ जोड़कर नहीं देखा जा रहा है। वर्तमान संदर्भ में विद्यालय को एक ऐसी संस्था के रूप में देखा जा रहा है, जो बच्चों के वर्तमान तथा भविष्य को प्रभावित करने में परिवार के बाद सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की क्षमता रखता है। नतीजतन, परिवार अथवा बाहरी संस्थाओं पर दोषारोपण के आधार ढूँढ़ने की प्रवृत्ति न रखते हुए उनकी भूमिका, चुनौतियों तथा सीमाओं को समझने का प्रयास किया गया।

शोध के लिए चयनित दोनों ही विद्यालय राजकीयकृत उत्क्रमित मध्य विद्यालय थे। दोनों ही विद्यालयों में के.जी. से लेकर आठवीं कक्षा तक की शिक्षा उपलब्ध है। यहाँ दोनों ही विद्यालयों से जुड़े प्रमुख प्रासंगिक तथ्यों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

विद्यालय संख्या 1 — संबंधित प्रमुख तथ्य

विद्यालय वर्ष 2009 में उत्क्रमित (अद्यतनीकृत) हुआ तथा वर्ष 2017 के सत्र के आरंभ से विद्यालय में के.जी. की कक्षा का संचालन प्रारंभ हुआ। स्वीकृत पदों के अनुसार विद्यालय में कुल 2 नियमित शिक्षक तथा 2 पारा शिक्षक होने चाहिए थे। इसके अनुसार वर्तमान में विद्यालय में सभी स्वीकृत पदों पर शिक्षक हैं। विद्यालय में कुल नामांकित विद्यार्थियों की संख्या 191 है। इसमें से छात्रों की कुल संख्या 79 तथा छात्राओं की कुल

संख्या 112 है। यह संख्या कुल 9 कक्षाओं के नामांकित विद्यार्थियों की है। कक्षावार नामांकन का ब्यौरा इस प्रकार है —

कक्षा	छात्र	छात्रा	कुल संख्या
के.जी.	06	02	08
I	01	02	03
II	02	13	15
III	08	16	24
IV	06	10	16
V	06	08	14
VI	23	22	45
VII	16	17	33
VIII	11	22	33
कुल योग	79	112	191

विद्यालय में अधिकांश बच्चे अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के हैं। बच्चों के माता-पिता के व्यवसाय की पृष्ठभूमि के आधार पर बात करें तो लगभग 75 प्रतिशत बच्चों के माता-पिता अवैध कोयला निकासी का काम करते थे। उनका काम कई प्रकार से विद्यालय के लिए चुनौतियाँ उपस्थित करता है। कभी कोयला निकासी पर प्रतिबंध लगने पर कई कोयला मजदूर काम के लिए दूसरी जगह भी चले जाते हैं। कभी वे अपने स्थायी आवास पर भी चले जाते हैं। यह प्रवास कई बार छह महीने का भी होता है। उनके साथ उनके बच्चे भी चले जाते हैं। वापस आने पर उनका पुनर्नामांकन तो होता है, लेकिन वे पढ़ाई में पिछड़ जाते हैं। कुछ मामलों में वे वहीं नामांकन भी करा लेते हैं, जिसके लिए विद्यालय उन्हें टी.सी. (स्थांतरण प्रमाण पत्र) देते हैं। विद्यालय में ऐसे लगभग अनियमित बच्चे 15 से 20 प्रतिशत थे।

वैसे तो एक गैर-सरकारी संगठन द्वारा भी विद्यालय को पढ़ाई के संबंध में सहयोग किया जाता था, परंतु यह कक्षा 1-2 के लिए ही था। विद्यालय का भवन अलग-अलग खण्डों में बना है, जिसमें से एक खण्ड दो-मंजिला है। इस भवन के प्रत्येक तल पर दो कक्षा-कक्ष हैं। एक भवन निर्माणाधीन है, जबकि एक अन्य कार्यालय के रूप में उपयोग में लाया जाता है। परंतु कक्षाओं की दृष्टि से भी विद्यालय का आधारभूत ढाँचा पर्याप्त नहीं है। 9 कक्षाओं के लिए कुल 6 कक्षा-कक्ष हैं। ऐसे में कक्षा के.जी., कक्षा 1 तथा कक्षा 2 के बच्चों को एक साथ बिठाया जाता है तथा कक्षा 3 और कक्षा 4 के विद्यार्थियों को एक साथ।

विद्यालय संख्या 2 — संबंधित प्रमुख तथ्य

विद्यालय संख्या दो में प्रधानाध्यापक के पद पर नियमित शिक्षक हैं तथा उनके अतिरिक्त विद्यालय में कुल 3 पारा शिक्षक हैं। जबकि स्वीकृत पदों के अनुसार विद्यालय में कुल 2 नियमित शिक्षक तथा 4 पारा शिक्षक होने चाहिए थे। शिक्षकों की वर्तमान संख्या विगत कई वर्षों से बनी हुई है। शिक्षकों के अतिरिक्त सृजन फ़ाउंडेशन नामक गैर-सरकारी संगठन भी एक साधनसेवी विद्यालय के साथ कार्यरत हैं, परंतु उनकी उपस्थिति नियमित नहीं है। विद्यालय वर्ष 2009 में उत्क्रमित (अद्यतनीकृत) हुआ तथा वर्ष 2017 के सत्र के आरंभ से विद्यालय में के.जी. की कक्षा का संचालन प्रारंभ हुआ।

विद्यालय के भवन अलग-अलग खण्डों में बने हुए हैं तथा उनका निर्माण अलग-अलग समय में किया गया है। सभी भवन एक मंजिले हैं। कुल

मिलाकर विद्यालय में कुल 5 कक्षा-कक्ष, एक कार्यालय, एक भंडार कक्ष, एक रसोई तथा एक पुस्तकालय है। प्रांगण में एक बड़े कमरे के भवन का निर्माण कार्य भी चल रहा है, जिसे कार्यालय के रूप में उपयोग के लिए बनाया जा रहा है। विद्यालय में छात्र और छात्राओं के लिए अलग-अलग शौचालय हैं, परंतु उनमें उपयोग के लिए पानी बाहर से लेकर जाना पड़ता है। विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं में नामांकन की जानकारी तालिका 2 में दी गई है।

तालिका 2 — कक्षावार नामांकित विद्यार्थियों की संख्या

कक्षा	छात्र	छात्रा	कुल संख्या
के.जी.	06	05	11
I	03	02	05
II	01	09	10
III	03	08	11
IV	07	07	14
V	07	05	12
VI	17	14	31
VII	17	11	28
VIII	07	12	19
कुल योग	68	73	141

विद्यालय में अधिकांश बच्चे अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के थे। उसमें भी मूल रूप से सभी विद्यार्थी अनुसूचित जनजाति के थे। बच्चों के माता-पिता के व्यवसाय की पृष्ठभूमि के आधार पर बात करें तो समूह चर्चा के दौरान शिक्षकों ने बताया कि लगभग 98 प्रतिशत बच्चों के माता-पिता अवैध कोयला निकासी का काम करते हैं। वहीं, एक अन्य शिक्षक ने इस संख्या को 80 प्रतिशत बताया।

चयनित विद्यालयों में शैक्षिक परिस्थितियाँ एवं शिक्षक

चयनित दोनों विद्यालयों के शिक्षकों के साथ कई दौर की अनौपचारिक चर्चाओं के माध्यम से जो तथ्य सामने आए, वे इस प्रकार हैं —

बच्चों की पृष्ठभूमि

दोनों विद्यालयों के सभी शिक्षकों को यह स्पष्ट रूप से ज्ञात था कि उनके विद्यालय में नामांकित अधिकांश बच्चों के माता-पिता की आजीविका अवैध कोयला खनन पर निर्भर है। सभी शिक्षकों ने चर्चाओं के दौरान यह बताया कि विद्यालय में नामांकित अधिकांश बच्चों के माता-पिता अवैध कोयला खनिक हैं। यद्यपि उनके उत्तरों में ऐसे बच्चों की कुल संख्या को लेकर भिन्नता थी। शिक्षकों के मतानुसार उनके विद्यालय में ऐसे बच्चों का प्रतिशत 70 से लेकर 98 तक है। सभी शिक्षक यह मानते हैं कि अपनी आजीविका के कारण अवैध कोयला मजदूर अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति कोई विशेष योगदान नहीं दे पाते। इस संबंध में माता-पिता का निरक्षर अथवा साक्षर होने का भी कोई प्रभाव नहीं होता। शिक्षक यह मानते हैं कि अवैध कोयला मजदूर अपने बच्चों की शिक्षा अथवा प्रगति को जानने के लिए समय ही नहीं दे पाते। वे बच्चों की शिक्षा के संबंध में विद्यालय से ही सारी अपेक्षाएँ रखते हैं। शिक्षकों ने यह बताया कि वैसे तो कई अभिभावक बार-बार बुलाने पर भी विद्यालय नहीं आते और जो भी माता-पिता विद्यालय आते हैं, उन्हें भी बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान रखने के लिए कहना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। पढ़ाई में मदद देना तो दूर, वे कई

बार तो अपने बच्चों को भी अपने कोयले के काम में मदद करने के लिए ले जाते हैं। ऐसे में कई बच्चे उम्र के साथ-साथ उस काम में अधिक शामिल होने लगते हैं और अंततः उसे ही आजीविका के रूप में अपना लेते हैं।

अध्यापन संबंधी चुनौतियाँ

दोनों ही विद्यालयों में नौ कक्षाओं का संचालन होता था जबकि दोनों ही विद्यालयों में कुल चार-चार शिक्षकों की ही नियुक्ति है। ऐसे में बहुकक्षीय शिक्षण का अपनाया जाना एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है। शिक्षकों द्वारा यह बताया गया कि शिक्षकों की कमी की समस्या यहीं समाप्त नहीं होती। प्रधानाध्यापक को कई विभागीय कार्यों का संपादन करना होता है। अतः अध्यापन के लिए उनकी उपलब्धता अकसर एक से दो पाली तक सीमित रहती है। अन्य शिक्षक भी केवल कक्षाओं में अध्यापन के लिए पूरा समय नहीं दे सकते, क्योंकि उन्हें नियमित रूप से कई विभागीय कार्यों का संपादन भी करना होता है जिसमें उपस्थित बच्चों की संख्या आदि से संबंधित सूचना विभाग को भेजा जाना शामिल है। जब किसी शिक्षक को विभागीय प्रशिक्षण के लिए अथवा विद्यार्थियों को किसी प्रतियोगिता आदि में भाग लेने के लिए साथ लेकर जाना होता है, तब विद्यालय में, कक्षाओं का संचालन और भी कठिन हो जाता है। यही स्थिति किसी शिक्षक के अवकाश पर होने पर भी होती है। एक शिक्षक एक साथ कई कक्षाओं में अध्यापन कर रहा होता है। वह एक कक्षा को काम देकर दूसरी कक्षा में जाता

है। ऐसी स्थिति में निश्चय ही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की गुणवत्ता प्रभावित होती है। ऐसे में यदि विद्यार्थियों को घर पर भी माता-पिता से पढ़ाई में किसी प्रकार से सहायता नहीं मिल पा रही हो तो उनके लिए मुश्किलें और बढ़ जाती हैं। इस प्रकार से अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों के लिए विद्यालय के भीतर और बाहर, दोनों ही स्थानों पर शैक्षिक परिवेश चुनौतीपूर्ण है।

व्यवस्था संबंधी चुनौतियाँ

दोनों चयनित विद्यालयों में शिक्षकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है कि विद्यालय में पर्याप्त शिक्षक संख्या नहीं है। इसके अतिरिक्त विद्यालय भवन में पर्याप्त संख्या में कक्षा-कक्ष भी नहीं हैं। एक ओर, सभी शिक्षकों पर विभागीय कार्यों का अतिरिक्त भार है। वहीं दूसरी ओर, इन विद्यालयों के वैसे शिक्षक जिनकी नियुक्ति पारा-शिक्षक के रूप में हुई है, वे अपने नियमित किए जाने को लेकर किए जाने वाले संघर्ष में शामिल हैं। ऐसे में पारा शिक्षकों का यह मानना है कि यदि वर्षों की सेवा के बाद भी उनके कार्यभार में नियमित शिक्षकों की तुलना में कोई कमी नहीं होने के बावजूद उन्हें नियमित नहीं किया जा रहा है तो यह उनके लिए निराश करने वाली स्थिति है। समान कार्य के लिए असमान वेतन एवं सेवा शर्तों के बीच वे लगातार अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान नहीं दे पाते। विद्यालय द्वारा विद्यार्थियों को दी जाने वाली निःशुल्क सुविधाओं के वितरण में भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से शिक्षकों को कार्य करना पड़ता है। ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जिसमें इन सुविधाओं

को सुनिश्चित करने के कारण शिक्षण प्रक्रियाएँ प्रभावित न हों।

बच्चों की शिक्षा के संबंध में माता-पिता की भूमिका

सभी शिक्षक यह मानते हैं कि अवैध कोयला मजदूर अपने बच्चों की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते। इसके पीछे उनकी निरक्षरता एक बड़ा कारण है, परंतु जो माता-पिता थोड़ा पढ़े-लिखे भी हैं, उनके पास भी अपने काम से इतना समय नहीं बचता कि वे अपने बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दे सकें। वे देर रात कोयला काटने के लिए अपने घर से निकल जाते हैं और तब वापस आते हैं, जब उनके बच्चे स्कूल जा चुके होते हैं। अवैध कोयले का काम करने वाले अधिकांश मजदूर शराब पीते हैं और इसलिए जब वे घर पर होते भी हैं, तब भी बच्चों की शिक्षा में कोई योगदान नहीं दे पाते। वे शराब पीने के पीछे अपने काम को अत्यधिक मेहनत वाला काम बताते हैं। परंतु इससे उनके बच्चों की शिक्षा पर जो नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, उसे तो विद्यालय दूर नहीं कर सकता। समूह चर्चाओं के दौरान शिक्षकों ने यह भी कहा कि अभिभावक-शिक्षक बैठकों में बुलाने पर भी अधिकांश माता-पिता विद्यालय नहीं आते, क्योंकि उस दौरान वे कोयले का काम कर रहे होते हैं। विद्यालय आने की स्थिति में भी वे बैठक की प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से शामिल नहीं होते। वे बस शिक्षकों की हर बात पर हामी भरते हैं। दो में से एक विद्यालय के शिक्षकों ने यह बताया कि हर लम्बे अवकाश के बाद विद्यालय में उपस्थिति कम हो जाती है। शिक्षक स्वयं तथा अन्य विद्यार्थियों

द्वारा सूचना भिजवाकर नहीं आने वाले बच्चों की उपस्थिति सुनिश्चित करते हैं। कोयले का काम करने वाले मजदूरों को इस विषय में भी ध्यान नहीं होता कि बच्चों का विद्यालय कब खुला है और कब बन्द। ऐसे में यह स्पष्ट है कि माता-पिता की जानकारी और सक्रिय सहभागिता का अभाव उनके बच्चों के शैक्षिक अवसरों को भी सीमित कर देता है।

संकुल संसाधन सेवी के अनुसार चयनित विद्यालयों की चुनौतियाँ

चयनित दोनों ही विद्यालय एक ही संकुल के अंतर्गत आते हैं। इन विद्यालयों से जुड़े संकुल संसाधन सेवी से प्राप्त जानकारीयों से संकुल के विद्यालयों की स्थिति का अनुमान लगाने का एक आधार प्राप्त होता है। शोध के लिए चयनित दो विद्यालय जिस संकुल का हिस्सा हैं उसमें विद्यालयों की कुल संख्या 14 है। उन्होंने बताया कि संकुल के किसी भी विद्यालय में कक्षाओं की संख्या के अनुसार शिक्षकों की पूरी संख्या नहीं है। यह स्थिति शिक्षकों के काम को मुश्किल बना देती है या यह कहें कि ऐसे में विद्यालयों से बहुत अच्छे प्रदर्शन की अपेक्षा करने का कुछ खास मतलब नहीं निकलता है। इसी संदर्भ में आगे चर्चा के दौरान उन्होंने बताया कि इन विद्यालयों में लगभग 1100 विद्यार्थी हैं जिसमें से लगभग 90 प्रतिशत बच्चे अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति से होंगे। इस संख्या में से लगभग 95 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जिनके माता-पिता असंगठित मजदूरों के रूप में

कार्य करते हैं, जिसमें अवैध कोयला मजदूर के रूप में काम करने वाले भी शामिल हैं। इसके अतिरिक्त लगभग दो से तीन प्रतिशत अभिभावक किसान हैं। यह बताते हुए उन्होंने दावा किया कि ऐसी पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे सरकारी विद्यालयों की तैयारी पूरी नहीं है। सरकारी विद्यालयों, जिनमें कि प्रदर्शन अच्छा नहीं है, की वर्तमान स्थिति की बात करते हुए उन्होंने उसके दो प्रमुख कारण बताए। ये दो कारण हैं — माता-पिता का अशिक्षित होना तथा सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों की अपर्याप्त संख्या का होना।

कोयले का अवैध खनन करने वाले कोयला मजदूरों की अपने बच्चों की शिक्षा के संबंध में अपेक्षाएँ

इस शोध के लिए जिन 14 कोयला मजदूरों के साथ चर्चाएँ की गईं, उनमें से कुल नौ मजदूर निरक्षर हैं। दो मजदूरों ने कक्षा 6 में और तीन मजदूरों ने कक्षा 9 में पढ़ाई छोड़ी थी। इस प्रकार से देखा जाए तो चयनित प्रतिभागियों में से अधिकांश निरक्षर हैं। ऐसे में यह समझना आवश्यक है कि वे बच्चों के लिए शिक्षा तथा विद्यालय की भूमिका के विषय में क्या सोच रखते होंगे।

जब कोयला मजदूरों से उनके बच्चों की शिक्षा से संबंधित प्रश्न किए गए तो सभी ने शिक्षा को महत्वपूर्ण बताया और सभी अपने बच्चों को शिक्षित करने के पक्षधर थे। परंतु अधिकांश प्रतिभागियों को यह जानकारी नहीं थी कि कौन-सी

अथवा कितनी शिक्षा उनके बच्चों के लिए बेहतर भविष्य सुनिश्चित कर सकती है। कुल चार प्रतिभागियों ने बच्चों के लिए कॉलेज की शिक्षा, जैसे कि आई.ए. (इन्टरमीडिएट ऑफ़ आर्ट्स-बी.ए. (बैचलर ऑफ़ आर्ट्स) का होना ज़रूरी बताया। कुछ प्रतिभागियों ने यह उम्मीद जताई कि बच्चे जब पढ़-लिख जाएँगे तो वे स्वयं यह जान पाएँगे कि कौन-सी अथवा कितनी पढ़ाई उनके लिए ठीक होगी। दो प्रतिभागियों ने यह कहा कि सरकार को स्कूल की शिक्षा की तरह ही कॉलेज की शिक्षा भी निःशुल्क उपलब्ध करानी चाहिए जिससे गरीबों के बच्चे भी आगे की पढ़ाई कर सकें।

कोयले का अवैध खनन करने वाले कोयला मजदूरों के बच्चों की शिक्षा से जुड़ी आकांक्षाएँ

इस शोध हेतु चयनित न्यादर्श में से 20 विद्यार्थियों से शोधक द्वारा चर्चा की गई। इन 20 विद्यार्थियों ने यह कहा कि उन्हें विद्यालय आना अच्छा लगता है, क्योंकि यहाँ उन्हें शिक्षा प्राप्त हो रही है। अधिकांश विद्यार्थियों ने अपने विद्यालय में शिक्षकों की संख्या में कमी होने के कारण उनकी पढ़ाई के प्रभावित होने का उल्लेख किया। जिस चयनित विद्यालय की चहारदीवारी राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 33 के चौड़ीकरण के दौरान टूट गई थी और अब तक बनाई नहीं गई है, उसके 10 में से आठ विद्यार्थियों ने विद्यालय की चहारदीवारी बनाए जाने की आवश्यकता बताई। वहीं, जब विद्यार्थियों से इस बात पर चर्चा की गई कि वे भविष्य में क्या बनना चाहते हैं तो निम्नलिखित उत्तर प्राप्त हुए —

रेलवे में ड्राइवर	02
फौज में नौकरी	03
डॉक्टर	03
इंजीनियर	01
डॉक्टर अथवा इंजीनियर	01
फुटबॉलर	03
क्लेक्टर	01
टीचर	01
बैंक मैनेजर	01
पुलिस में नौकरी	02
नौकरी नहीं करनी	01
अभी नहीं सोचा है	01

उपरोक्त में से किसी भी विद्यार्थी को यह मालूम नहीं था कि जो वे बनना चाहते हैं, उसके लिए कौन-सी डिग्री की आवश्यकता होगी अथवा कहाँ तक पढ़ना होगा। एक विद्यार्थी को छोड़कर अन्य सभी ने अपने माता-पिता द्वारा पढ़ाई के लिए प्रोत्साहित किए जाने का उल्लेख किया।

भविष्य से जुड़े सपने के बारे में विद्यार्थियों द्वारा बताए गए उत्तर में कार्य संबंधी जेंडर विभेदीकरण नहीं दिखा। लड़कों और लड़कियों, दोनों ने फौजी, डॉक्टर तथा फुटबॉलर बनने को अपना सपना बताया। केवल एक छात्रा ने कहा कि वह कोई नौकरी नहीं करेगी, क्योंकि उसके आस-पड़ोस में लड़कियों का नौकरी करना अच्छा नहीं माना जाता। एक विद्यार्थी ने यह कहा कि यदि उसे पुलिस में नौकरी नहीं मिली तो मजबूरी में वह भी अपने माता-पिता की तरह ही कोयले के खनन का कार्य करेगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कहीं-न-कहीं विद्यालय में नामांकित लगभग हर ऐसे विद्यार्थी, जिसके माता-पिता कोयले के अवैध खनन का कार्य

करते हैं, का अपने भविष्य को लेकर देखा गया सपना उनके शिक्षित होने से जुड़ा है और वे आशान्वित हैं कि एक दिन वे पढ़-लिख कर अपने लिए एक बेहतर भविष्य बना पाएँगे।

निष्कर्ष

अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों का जीवन हर दिन अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्ष की कहानी है। शोध में शामिल किए गए सभी मजदूर हैं। अधिकांश अवैध कोयला मजदूर अशिक्षित हैं, परंतु यह चाहते हैं कि उनके बच्चों को अच्छी शिक्षा प्राप्त हो। उनके बच्चों के लिए पास में सरकारी विद्यालय में पढ़ने की सुविधा तो है, परंतु उन विद्यालयों में आधारभूत संरचना तथा मानव संसाधन संबंधित चुनौतियाँ हैं। वैसे तो ऐसी चुनौतियाँ इस प्रकार के अधिकांश अन्य विद्यालयों में भी संभव हैं, परंतु इससे अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों के लिए मुश्किलें और बढ़ जाती हैं। उनके माता-

पिता की आजीविका के कारण उनके विद्यालय के बाहर के वातावरण का शैक्षिक अनुभवों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में उनके शैक्षिक अनुभवों एवं अवसरों को समृद्ध करने का बड़ा दारोमदार उनके विद्यालय पर ही है। ऐसे में वे विद्यालय जो उनकी पहुँच में हैं, वहाँ अवसरों को सीमित करने वाला हर एक कारक बच्चों की शिक्षा एवं उनके भविष्य की संभावनाओं को प्रभावित करता है। अतः यह आवश्यक है कि अवैध रूप से कोयला खनन करने वाले मजदूरों के बच्चों की शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं के प्रति विद्यालयी पाठ्यचर्या तथा उन्हें शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने वाले विद्यालयों को संवेदनशील बनाया जाए जिससे संविधान द्वारा हर बच्चे को दिए गए जीवन के अधिकार को सुनिश्चित किया जा सके, जिसमें उनके द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी शामिल है।

संदर्भ

- अख्तर, एस. 2017. फॉर इल्लिगल कोल मायनर्स इन झारखंड, डेथ इज एन एव्रीडे ओक्युपेशनल हैज़र्ड. *यूथ की आवाज़*. 20 अप्रैल, 2018 को <https://www.youthkiawaaz.com/2017/02/illegal-coal-mining-in-jharkhand/> से लिया गया.
- अरीपरंपिल, एम. 1996. डिसप्लेसमेंट ड्यू टू मायनिंग इन झारखंड. *इकनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली*. वॉल्यूम 31, नं. 24. 11/09/2014 को <http://www.jstor.org/stable/4404276> से लिया गया.
- बैंग, एन. पी. और पून सिंह. 2013. 'द अनटोल्ड कोल स्टोरी — झारखंड साइकिल पुलर्स वर्क फ़ॉर ए पिटेन्स? फ़र्स्ट पोस्ट. 18 अप्रैल, 2018 को <https://www.firstpost.com/india/the-untold-coal-story-jharkhands-cycle-pullers-work-for-a-pittance-1224821.html> on से लिया गया.
- लहरी-दत्त, के. 1997. अंडरमायनिंग एक्जिस्टेन्स. *डाउन टू अर्थ*. 12 जुलाई 2013 को <http://www.downtoearth.org.in/node/24819> से लिया गया.

- लहरी-दत्त, के. और डी. जे. विलियम. 2005. दि कोल साइकल — स्मॉल-स्केल इल्लिगल कोल सप्लाय इन ईस्टर्न इंडिया. *रिसोर्सेज, एनर्जी एंड डेवलपमेंट*. 2(2), पृ. 93–105. https://crawford.anu.edu.au/pdf/staff/rmap/lahiridutt/JA16_KLD_Williams_Illegal.pdf से लिया गया.
- दि कोल-साइकल वालान् ऑफ़ झारखंड, पुशिंग 300 कि.ग्रा. फॉर 30 कि.मी. टू अर्न डीएच 11. 24 दिसंबर, 2017 को <https://www.thenational.ae/world/asia/the-coal-cycle-wallahs-of-jharkhand-pushing-300kg-for-30km-to-earndh11-1.376599> से लिया गया.
- रवि, एस. एस. 2016. *ए कॉम्प्रिहेंसिव स्टडी ऑफ़ एजुकेशन*. पी.एच.एल. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली.
- भारत सरकार. 2017. कोयला — भारतीय ऊर्जा विकल्प. 20 नवंबर, 2017 को <https://coal.nic.in/hi/content/coal-indian-energy-choice> से लिया गया.
- भारत सरकार. 2017. उज्ज्वल भारत 3 वर्ष. 20 नवंबर, 2017 को https://coal.nic.in/sites/upload_files/coal/files/curentnotices/Ujjwal_Bharat_3_Year_Brochure_Hindi_Web_Version.pdf से लिया गया.
- कुमार, पी. 27 मई 2017. झारखंड — फ़ाइव किल्ड, 20 इंजर्ड ऐंज इल्लिगल कोल माइन केव्स इन. 13 अप्रैल 2018 को <https://www.hindustantimes.com/ranchi/jharkhand-five-killed-20-injured-as-illegal-coal-mine-caves-in/story-8NnbQXekrkSJ3xdEwARb3I.html> से लिया गया.

समावेशी शिक्षा प्रतिमान में कक्षा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया

अखिलेश यादव*

यह शोध पत्र 'समावेशी शिक्षा प्रतिमान में कक्षा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया' पर आधारित है। शोध में प्रतिदर्श के रूप में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर ज़िले के 13 शासकीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों एवं 13 अशासकीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों की कक्षाओं का चयन किया गया। प्रतिदर्शों का चयन प्रतिदर्शन की यादृच्छिक अवसरानुसार प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया। आँकड़ों का संग्रहण करने के लिए अवलोकन एवं स्व-निर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया। स्व-निर्मित प्रश्नावली में कथनों का चयन यूनेस्को की रिपोर्ट 'पॉलिसी गाइड-लाइन ऑन इनक्लुजन इन एजुकेशन' (2009) एवं 'टीचिंग विद डिसेबल चिल्ड्रेन' (2015) के आधार पर किया गया। प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर ज्ञात परिणाम के अंतर्गत कहा जा सकता है कि ज्यादातर कक्षाओं में शिक्षक केवल व्याख्यान विधि का ही उपयोग करते हैं। शासकीय विद्यालयों में 30 प्रतिशत कक्षाओं में चार्ट, मॉडल, मानचित्र; 20 प्रतिशत कक्षाओं में दृश्य-श्रव्य साधन; 5 प्रतिशत कक्षाओं में कम्प्यूटर; 45 प्रतिशत कक्षाओं में केवल पुस्तकों का प्रयोग किया जाता है। शासकीय विद्यालयों में दिव्यांग विद्यार्थियों की संख्या कुल विद्यार्थियों में 37 (16 प्रतिशत) थी, वहीं अशासकीय विद्यालयों में दिव्यांग विद्यार्थियों की संख्या कुल विद्यार्थियों में मात्र 04 (0.51 प्रतिशत) ही थी। शासकीय विद्यालय में कक्षाएँ समावेशी शिक्षा के अनुकूल पाई गई जबकि अशासकीय विद्यालय में कक्षाएँ समावेशी शिक्षा के प्रतिकूल पाई गई।

प्रस्तावना

समावेशी शिक्षा केवल एक दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि एक माध्यम भी है, विशेषकर उन लोगों के लिए जिनमें कुछ सीखने की ललक होती है और जो तमाम अवरोधों के बावजूद आगे बढ़ना चाहते हैं। यह इस बात को दर्शाता है कि सभी युवाओं, चाहे वो सामान्य हों या दिव्यांग, को सीखने योग्य बनाया जाए। इसके लिए एक समान विद्यालय-पूर्व व्यवस्था, विद्यालयों और सामुदायिक शिक्षा व्यवस्था तक सबकी पहुँच सुनिश्चित करना बेहद

ज़रूरी है। विद्यार्थियों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए यह प्रक्रिया सिर्फ लचीली शिक्षा प्रणाली में ही संभव है। 'समावेशी शिक्षा' ऐसी शिक्षा प्रणाली है जिसमें मूल्यों, ज्ञान प्रणालियों और संस्कृतियों में प्रक्रियाओं और संरचनाओं के सभी स्तरों पर समावेशी नीतियों और प्रथाओं के सृजन के माध्यम से बुनियादी मानव और शारीरिक, संवेदनशील, बौद्धिक या स्थितिजन्य हानियों के साथ सभी नागरिक अधिकारों को प्राप्त किया जाता है।' (एन.सी.ई.आर.टी. 2016)

भारत में दिव्यांगों से संबंधित कानूनी प्रावधानों के इतिहास का प्रारम्भ वर्ष 1944 में *सार्जेंट रिपोर्ट* से माना जाता है, जिसमें यह कहा गया था कि विकलांगता यदि विशेष विद्यालय के अनुकूल है, तभी विकलांग व्यक्तियों को विशेष विद्यालय में भेजा जाना चाहिए। इसी बात पर कोठारी आयोग (1966-68) ने भी जोर दिया और विकलांग लोगों की शिक्षा को शिक्षा नीति का एक अभिन्न अंग माना। भारत में समावेशी शिक्षा की शुरुआत के लिए 'दिव्यांगों के लिए समेकित शिक्षा योजना' 1970 के दशक में प्रारम्भ की गई, जिसका उद्देश्य विकलांग बच्चों को सामान्य विद्यालय में शामिल करना व शैक्षिक अवसर प्रदान करने के साथ-ही-साथ सभी स्तर पर उन्हें समुदाय से जोड़ना था। इसके बाद अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की गईं, परन्तु समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में वर्ष 2000 महत्वपूर्ण है, जब एन.सी.ई.आर.टी. ने 'राष्ट्रीय विद्यालयी शिक्षा की रूपरेखा, 2000' प्रकाशित की जिसमें समावेशी विद्यालयों को मंजूरी दी गई। इसका कारण 'आई.सी.डी.सी.' योजना के परिणाम अनुकूल न होने से समावेशी शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाना था। भारत में समावेशी शिक्षा के लिए वर्ष 2009 भी महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इसी वर्ष 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम' पारित किया गया, जिसने सभी के लिए शिक्षा को संवैधानिक अधिकार प्रदान किया।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समावेशी शिक्षा के लिए 'सलमांका सम्मेलन' 1994 मील का पत्थर साबित हुआ, जो जून 1994 में स्पेन के सलमांका शहर में आयोजित हुआ। इसमें 92 देशों के प्रतिनिधियों व

25 अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन का प्रमुख निर्णय था 'सभी के लिए शिक्षा' जिसमें बच्चों, युवाओं और विशेष आवश्यकता वाले लोगों को सामान्य शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा प्रदान करना सम्मिलित था।

यूनेस्को (2016) के अनुसार, समावेशी शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है —

1. जो यह विश्वास करती है कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और सभी बच्चों की अलग-अलग प्रकार की विशेष आवश्यकता होती है।
2. जिसका लक्ष्य सीखने की कठिनाइयों की पहचान और उनका प्रभाव न्यूनतम करना है।
3. जो औपचारिक शिक्षा से वृहद् अर्थ रखता है और घर, समुदाय एवं घर से बाहर शिक्षा के अन्य अवसरों पर भी बल देता है।
4. जो अभिवृत्तियों, व्यवहारों, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम एवं वातावरण को परिवर्तित करने की वकालत करती है ताकि सभी विद्यार्थियों की विशेष आवश्यकताएँ पूरी हो सकें।
5. समावेशी शिक्षा एक स्थिर गति से चलने वाली एक गतिशील प्रक्रिया है और समावेशी समुदाय को प्रोन्नत करने के लिए प्रयुक्त विभिन्न तरीकों का एक भाग है।

समावेशी शिक्षा

“एक समावेशी शिक्षा प्रणाली में विद्यालय को अन्य विद्यार्थियों (दिव्यांग) हेतु समान बनाना जिससे उन्हें अधिक-से-अधिक समाहित किया जा सके। दूसरे शब्दों में, सभी बच्चों को उन्हीं के समुदाय में नियमित विद्यालयों में शिक्षा प्रदान की जाए।” (सलमांका कान्फ्रेंस, 1994)

“सभी की शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य तक पहुँच के लिए चुनौतियों की पहचान कर समानता को प्रोत्साहित करना, अर्थात् समावेशी शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा सभी सीखने वालों तक अपनी पहुँच सुनिश्चित की जाती है” (द वर्ल्ड डिक्लेरेशन ऑन एजुकेशन फ़ॉर ऑल, थाईलैंड, 1990)।

“समावेशी शिक्षा से तात्पर्य है कि सभी सीखने वाले युवाओं (सामान्य एवं दिव्यांग) के लिए विद्यालय-पूर्व प्रावधानों तथा विद्यालय में एक साथ सीखने के अवसर उपलब्ध कराना। साथ ही उन्हें सामुदायिक शैक्षणिक परिस्थिति, समर्थन सेवाओं का उचित नेटवर्क उपलब्ध कराया जाए।” (ड्राफ्ट ऑफ़ इंकलूसिव एजुकेशन स्कीम, एम.एच.आर.डी. 2003) और “समावेश करना तथा बाहर रखना सर्वत्र एक समान श्रेणियाँ नहीं होती। हर स्थिति अपने खुद के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वैश्विक तथा सन्दर्भगत प्रभावों के द्वारा निर्मित की जाती है” (बार्टन और आर्मस्ट्रॉंग, 2007)।

यूनिसेफ़ के अनुसार समावेशी शिक्षा का मतलब यह है कि हम पारंपरिक स्कूलों के लिए नियमित रूप से स्कूल प्रणाली के भीतर सीखने के अवसर उन्हें उपलब्ध करते हैं, जो पारंपरिक रूप से बहिष्कृत किए गए हैं, जैसे कि, दिव्यांग बच्चे, अन्य (भाषाई अल्पसंख्यक, सामाजिक रूप से पिछड़े, आर्थिक रूप से कमज़ोर, शैक्षिक रूप से पिछड़े आदि)। यदि इन्हें स्कूलों में अलग किया जाता है तो इन दिव्यांग और अन्य (भाषाई अल्पसंख्यक, सामाजिक रूप से पिछड़े, आर्थिक रूप से कमज़ोर, शैक्षिक रूप से पिछड़े आदि) बच्चों को उचित शैक्षिक अवसर नहीं प्राप्त होता है, जिससे वे समाज से अलग-थलग पड़ जाते हैं।

इस प्रकार समावेशी शिक्षा से अभिप्राय ऐसी शिक्षा से है जिसमें दिव्यांग एवं अन्य सामान्य विद्यार्थियों को एक साथ एक ही कक्षा में भेदभाव रहित वातावरण में शिक्षा प्रदान की जाए, जिससे ये दिव्यांग विद्यार्थी समाज में आसानी से समायोजित हो सकें। जैसा कि एन.सी.एफ. 2005 में भी बताया गया है, समावेशन की नीति को हर स्कूल और पूरी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किए जाने की ज़रूरत है। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह स्कूल में हो या बाहर, सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की ज़रूरत है। स्कूलों को ऐसे केंद्र बनाए जाने की आवश्यकता है, जहाँ बच्चों को जीवन की तैयारी कराई जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी बच्चों, खासकर शारीरिक या मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों, समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों और कठिन परिस्थितियों में जीने वाले बच्चों को शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के सबसे ज़्यादा फ़ायदे मिलें।

समावेशी शिक्षा में विद्यार्थी एवं शिक्षक

स्कूलों में अक्सर हम कुछ गिने-चुने बच्चों को ही बार-बार चुनते रहते हैं। इस छोटे समूह को तो ऐसे अवसरों से फ़ायदा होता है, उनका आत्मविश्वास बढ़ता है और वे स्कूल में लोकप्रिय हो जाते हैं। लेकिन दूसरे बच्चे बार-बार उपेक्षित महसूस करते हैं और स्कूल में पहचाने जाने और स्वीकृति की इच्छा उनके मन में लगातार बनी रहती है। तारीफ़ करने के लिए हम श्रेष्ठता और योग्यता को आधार बना सकते हैं, लेकिन अवसर तो सभी बच्चों को मिलने चाहिए और सभी बच्चों की विशिष्ट क्षमताओं को भी पहचाना जाना चाहिए और उनकी तारीफ़ होनी चाहिए। इसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चे भी

शामिल हैं, जिन्हें दिए गए काम को पूरा करने में ज्यादा समय या मदद की जरूरत होती है। ज्यादा अच्छा होगा अगर शिक्षक ऐसी गतिविधियों की योजना बनाते समय कक्षा में बच्चों से चर्चा करें और यह सुनिश्चित कर लें कि प्रत्येक बच्चा अपना योगदान दे पाए। इसीलिए योजना बनाते समय शिक्षकों को सभी की भागीदारी पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। यह उनके प्रभावी शिक्षक होने का सूचक बनेगा। स्कूल प्रशासकों और शिक्षकों को यह समझना चाहिए कि जब भिन्न सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और भिन्न क्षमता स्तर वाले लड़के-लड़कियाँ एक साथ पढ़ते हैं तो कक्षा का वातावरण और भी समृद्ध तथा प्रेरक हो जाता है।

सभी प्रकार के बच्चों, जैसे — आर्थिक रूप से कमजोर (गरीब) कामकाजी, सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले, घुमंतू जनजातियों, किसी निर्दिष्ट स्थान पर रहने वाले, विशेष आवश्यकता वाले, भाषाई अल्पसंख्यक और सीखने की अक्षमता युक्त बच्चों को समावेशी शिक्षा द्वारा शिक्षित किया जाए (वर्ड एजुकेशन फ़ोरम मीटिंग रिपोर्ट, अप्रैल 2010)।

इस प्रकार एक समावेशी कक्षा में, जैसा कि यूनिसेफ, यूनेस्को की रिपोर्ट, एन.सी.एफ 2005, एवं एन.सी.एफ.ई. — 2000 में बताया गया है — समावेशी कक्षा में दिव्यांग (शारीरिक दिव्यांग, दृष्टिबाधित दिव्यांग, वाक्बाधित दिव्यांग, स्वलीनता, सीखने की अक्षमता युक्त दिव्यांग), शैक्षिक पिछड़ा, भाषाई अल्पसंख्यक, सामाजिक आर्थिक रूप से कमजोर बच्चे, ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चे, जनजातीय बच्चे, घुमंतू समाज के बच्चे कामकाजी समूह के बच्चे आदि प्रकार के बच्चों को शामिल किया जाता है।

संबंधी साहित्य का सर्वेक्षण

समावेशी शिक्षा में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि समावेशी कक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक के दृष्टिकोण (अभिवृत्ति) एवं व्यवहार महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। राम (2014) ने अपने शोध कार्य में पाया कि शिक्षकों का दिव्यांग विद्यार्थियों से प्रश्न न पूछना एवं उनके गृह कार्य की जाँच को अन्य विद्यार्थियों के समान न करना, इन बच्चों को बहिष्करण की तरफ धकेलता है। शिक्षकों का इस प्रकार का दृष्टिकोण एवं व्यवहार समावेशी शिक्षा के गठन एवं सफल संचालन में कठिनाई उत्पन्न करता है। सामान्यतः शिक्षक का दृष्टिकोण एवं व्यवहार दिव्यांग विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होता है, जिससे शिक्षक इस प्रकार के विद्यार्थियों को अन्य से कमजोर समझते हैं या कहें कि सीखने लायक नहीं समझते हैं और ये बच्चे कक्षा में होते हुए भी स्वयं को कक्षा से अलग पाते हैं। ज्यादातर शिक्षक दिव्यांग एवं इस प्रकार के अन्य विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हैं जैसा कि कलाम (2014) ने अपने शोध में बताया कि शिक्षकों को सहानुभूति के बजाय समानुभूति का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए जिससे इस प्रकार के विद्यार्थी स्वयं को कक्षा में अन्य विद्यार्थियों से भिन्न नहीं समझेंगे समानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण दिव्यांगों को अन्य विद्यार्थियों के समान मज़बूत बनाने में सहायक होता है, जिससे समावेशी कक्षा में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया एक पक्षीय न होकर द्विपक्षीय हो जाएगी।

शोध के उद्देश्य

इस शोध अध्ययन के निम्न उद्देश्य थे —

1. सामान्य विद्यालयों की कक्षाओं की शिक्षण प्रक्रिया का समावेशी शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन करना।

2. सामान्य विद्यालयों की कक्षाओं की सुविधाओं का समावेशी शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन करना।
3. सामान्य विद्यालयों की सुविधाओं का समावेशी शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन करना।

शोध विधि

इस शोध कार्य हेतु शोधार्थी द्वारा शोध विधि के रूप में वर्णनात्मक शोध की सर्वेक्षण विधि एवं विश्लेषणात्मक विधि का उपयोग किया गया है।

जनसंख्या एवं प्रतिदर्श

इस शोध कार्य हेतु शोधार्थी ने उत्तर प्रदेश राज्य के गाजीपुर ज़िले के जखनियाँ तहसील के 71 उच्च प्राथमिक विद्यालयों एवं उच्च प्राथमिक कक्षाओं को संचालित करने वाले विद्यालयों में से 26 उच्च प्राथमिक विद्यालय की कक्षाओं का अवलोकन किया। इनमें से 13 शासकीय एवं 13 अशासकीय विद्यालयों का चयन किया गया है,

अवलोकन हेतु विद्यालयों का चयन प्रतिदर्शन की यादृच्छिक अवसरानुसार प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया था।

उपकरण

इस शोध हेतु शोधार्थी द्वारा आँकड़े संग्रहण हेतु अवलोकन एवं स्व-निर्मित प्रश्नावली का उपयोग किया गया है। चयनित 13 शासकीय एवं 13 अशासकीय विद्यालयों की 96 कक्षाओं का अवलोकन समावेशी शिक्षा के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर किया गया है। इन विद्यालयों में कक्षा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का अवलोकन अग्रलिखित कथनों के आधार पर किया गया है। इन कथनों का चयन यूनेस्को की रिपोर्ट 'पॉलिसी गाइडलान ऑन इनक्लूजन इन एजुकेशन (2009)' एवं टीचिंग विद डिसेबल चिल्ड्रेन (2015)' के आधार पर किया गया है —

क्र.सं.	प्रश्न
1.	कक्षा शिक्षण में शिक्षक किन शिक्षण विधियों का उपयोग करते हैं?
2.	शिक्षक कक्षा शिक्षण में किस प्रकार की सहायक सामग्री का उपयोग करते हैं?
3.	शिक्षक द्वारा कक्षा में भाषा का उपयोग किस प्रकार किया जाता है?
4.	कक्षा का वातावरण कैसा है एवं कक्षा में शिक्षण के दौरान विद्यार्थी एक-दूसरे का सहयोग करते हैं या नहीं?
5.	कक्षा शिक्षण के दौरान शिक्षक किन-किन चुनौतियों का सामना करते हैं?
6.	क्या शिक्षक विशेष शिक्षा के लिए प्रशिक्षित हैं एवं क्या शिक्षकों ने सेवाकाल के दौरान विशेष आवश्यकता समूह के बच्चों के शिक्षण हेतु प्रशिक्षण प्राप्त किया है?
7.	कक्षा में सीखने के दौरान विशेष आवश्यकता समूह (दिव्यांग) के बच्चों को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?
8.	क्या विशेष आवश्यकता समूह (दिव्यांग) बच्चों को पाठ्यचर्या संबंधित सीखने के लिए आवश्यकतानुसार सामग्री उपलब्ध है?

सांख्यिकी — इस शोध हेतु शोधार्थी ने सांख्यिकी के रूप में मध्यमान एवं प्रतिशत का उपयोग किया है।

आँकड़ों की प्राप्ति — इस शोध कार्य हेतु कक्षाओं के अवलोकन एवं शिक्षक चर्चा के पश्चात् तथ्य निम्नलिखित थे —

क्र. सं.	कथन	शासकीय विद्यालय	अशासकीय विद्यालय
1.	कक्षाओं में शिक्षण विधि का प्रयोग	67 प्रतिशत कक्षाओं में व्याख्यान विधि, 30 प्रतिशत कक्षाओं में व्याख्यान विधि+प्रदर्शन विधि, 3 प्रतिशत कक्षाओं में व्याख्यान विधि+प्रदर्शन विधि+परियोजना विधि	95 प्रतिशत कक्षाओं में व्याख्यान विधि, 5 प्रतिशत कक्षाओं में व्याख्यान विधि+प्रदर्शन विधि
2.	शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग	30 प्रतिशत कक्षाओं में चार्ट, मॉडल, मानचित्र; 20 प्रतिशत कक्षाओं में दृश्य, श्रव्य साधन; 5 प्रतिशत कक्षाओं में कंप्यूटर; 45 प्रतिशत कक्षाओं में केवल पुस्तकों का प्रयोग	35 प्रतिशत कक्षाओं में चार्ट, मॉडल, मानचित्र; 22 प्रतिशत कक्षाओं में दृश्य-श्रव्य साधन; 35 प्रतिशत कक्षाओं में कंप्यूटर; 8 प्रतिशत कक्षाओं में केवल पुस्तकों का प्रयोग
3.	कक्षा शिक्षण की भाषा	80 प्रतिशत मातृभाषा, 15 प्रतिशत अंग्रेजी भाषा, 5 प्रतिशत मातृभाषा+अंग्रेजी	45 प्रतिशत मातृभाषा, 40 प्रतिशत अंग्रेजी भाषा, 15 प्रतिशत मातृभाषा+अंग्रेजी
4.	विशेष आवश्यकता के संदर्भ में कक्षा वातावरण	42 प्रतिशत कक्षाओं का वातावरण विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के अनुकूल, 58 प्रतिशत कक्षाओं का वातावरण विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रतिकूल	22 प्रतिशत कक्षाओं का वातावरण विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के अनुकूल, 78 प्रतिशत कक्षाओं का वातावरण विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रतिकूल
5.	शिक्षकों के सम्मुख विशेष आवश्यकता समूह के शिक्षण में आने वाली चुनौतियाँ	सम्प्रेषण, भाषा, कक्षा व्यवस्था, शिक्षण विधि, पाठ्यचर्या सामग्री में चुनौतियों का सामना करना पड़ा	संप्रेषण, भाषा, कक्षा व्यवस्था, शिक्षण विधि तथा पाठ्यचर्या सामग्री में चुनौतियों का सामना करना पड़ा।
6.	समावेशी शिक्षा के संदर्भ में शिक्षकों की प्रशिक्षण स्थिति	सेवा-पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक=8, सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक=10, समावेशी शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्रशिक्षण रहित शिक्षक=30	सेवा-पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक=4, सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक=2, समावेशी शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्रशिक्षण रहित शिक्षक=42
7.	विशेष आवश्यकता समूह के विद्यार्थियों को कक्षा में अधिगम संबंधी चुनौतियाँ	अभिवृत्ति, भाषा, कक्षा समायोजन, सहपाठियों द्वारा भेदभाव	अभिवृत्ति, भाषा, कक्षा समायोजन, सहपाठियों द्वारा भेदभाव

8.	कक्षा में विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को पाठ्यचर्या संबंधी सीखने की सामग्री	कक्षाओं में संसाधन उपलब्धता 30 प्रतिशत, कक्षाओं में संसाधन अनुपलब्धता 70 प्रतिशत	कक्षाओं में संसाधन उपलब्धता 10 प्रतिशत, कक्षाओं में संसाधन अनुपलब्धता 90 प्रतिशत
9.	शिक्षक विद्यार्थी अनुपात	1:28	1:45

मुख्य परिणामों की प्राप्ति

इस शोध में आँकड़े संग्रहण एवं विश्लेषण के पश्चात् निम्नलिखित मुख्य परिणामों की प्राप्ति हुई है —

- शोध में परिणामतः पाया गया कि शासकीय विद्यालयों में कक्षाएँ समावेशी शिक्षा के अनुकूल थीं, जबकि अशासकीय विद्यालयों में कक्षाएँ समावेशी शिक्षा के प्रतिकूल थीं, जैसे कि शिक्षकों द्वारा शिक्षण विधि के रूप में व्याख्यान विधि के अलावा प्रदर्शन एवं परियोजना विधि का उपयोग किया जाता है। अशासकीय विद्यालय की कक्षाओं की अपेक्षा शासकीय विद्यालय की कक्षाएँ ज्यादा लोकतांत्रिक थीं, क्योंकि शासकीय विद्यालय के शिक्षक शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों की कक्षा में पूर्ण भागीदारी बनाए रखते हैं।
- शोध में प्राप्त हुआ कि शासकीय विद्यालयों के शिक्षक समावेशी सेटिंग के अनुरूप योग्य हैं, शासकीय विद्यालयों के 80 प्रतिशत शिक्षक (41 शिक्षक) समावेशी सेटिंग के अनुरूप योग्य थे, जबकि 20 प्रतिशत शिक्षक (11 शिक्षक) समावेशी सेटिंग के अनुरूप योग्य नहीं थे। अशासकीय विद्यालयों के 36 प्रतिशत शिक्षक (19 शिक्षक) समावेशी सेटिंग के अनुरूप योग्य थे, जबकि 64 प्रतिशत शिक्षक (33 शिक्षक) समावेशी सेटिंग के अनुरूप योग्य नहीं थे। इन

शिक्षकों में योग्य उन शिक्षकों को माना गया, जो समावेशी सेटिंग का ज्ञान रखते हैं या प्रशिक्षण प्राप्त हैं।

- शोध में प्राप्त हुआ कि शासकीय विद्यालयों में दिव्यांग विद्यार्थियों की संख्या कुल विद्यार्थियों में 37 (16 प्रतिशत) थी, वहीं अशासकीय विद्यालयों में दिव्यांग विद्यार्थियों की संख्या कुल विद्यार्थियों में मात्र 04 (0.51 प्रतिशत) ही थी, क्योंकि अशासकीय विद्यालयों में दिव्यांग विद्यार्थियों में से सिर्फ उन्हीं को प्रवेश दिया जाता है जो केवल शारीरिक दिव्यांग (चलन क्रिया दिव्यांग) हैं।

निष्कर्ष

परिणामों की व्याख्या के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कक्षाओं को समावेशी शिक्षा के अनुकूल बनाने हेतु अधिक-से-अधिक भौतिक एवं पाठ्य संसाधन उपलब्ध कराने की आवश्यकता है, साथ ही समावेशी शिक्षा को व्यापक स्तर पर सफल बनाने के लिए शिक्षकों को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाए कि वे सामान्य कक्षाओं को समावेशी शिक्षा के अनुकूल बनाकर शिक्षण कार्य करें। समावेशी शिक्षा में कक्षा शिक्षण कार्य विद्यार्थियों के अनुरूप एवं उनकी आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाए,

शिक्षण इस प्रकार से हो जो विद्यार्थियों को उनके घरेलू ज्ञान से जोड़कर दिया जाए। साथ ही समावेशी कक्षा में विभिन्न वर्ग समूह के विद्यार्थी आते हैं जिससे कक्षा में विभिन्नता में भी एकता के सिद्धांत का पालन किया जाता है। किसी समावेशी कक्षा में कई गतिविधियाँ एक साथ चलती हैं। इसलिए सिखाने की प्रक्रिया शिक्षक-केंद्रित से विद्यार्थी-केंद्रित होनी चाहिए। विद्यार्थियों को सक्रिय अन्वेषक की तरह विकसित होना चाहिए और इसके लिए प्रेरक विचारों को बढ़ावा देने की रणनीति बहुत फ़ायदेमंद शिक्षण विधि साबित हो सकती है। इस रणनीति का प्रयोग करने के लिए शिक्षक को खोजी शिक्षण के ज़रिए सभी विद्यार्थियों को उचित अनुभव, नियमों के विश्लेषण और सिद्धांत मुहैया कराने की ज़रूरत है। इसे ध्यान में रखते हुए समावेशी शिक्षण और कक्षा में असमर्थ विद्यार्थियों के लिए लचीलापन लाए जाने पर ज़ोर देने की आवश्यकता है। यह पठन सामग्री इस सोच पर आधारित होनी चाहिए कि शिक्षक कक्षा में सभी विद्यार्थियों को अर्थपूर्ण शिक्षण अनुभव प्रदान कराएँ और सरल भाषा और अभिव्यक्ति का प्रयोग करें जो सभी विद्यार्थियों के लिए महत्व रखे। इस

पठन सामग्री में कई उदाहरणों से बताया जा सकता है कि कैसे समावेशी कक्षा में मौजूदा शिक्षण पद्धति को बदला जाए और विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से सीखने वाला और इस प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाया जाए।

शैक्षिक निहितार्थ

शोध के शैक्षिक निहितार्थ के संदर्भ में कहा जा सकता है कि कक्षा का वातावरण भेदभाव रहित एवं सभी सीखने वालों के अनुकूल होना चाहिए। जैसा कि एन.सी.एफ. 2005 में सुझाया गया है कि 'सावर्जनिक स्थल के रूप में स्कूल में समानता, सामाजिक विविधता और बहुलता के प्रति सम्मान का भाव भी होना चाहिए, साथ ही बच्चों के अधिकारों और उनकी गरिमा के प्रति सजगता का भाव भी होना चाहिए। इन मूल्यों को सजगतापूर्वक स्कूल के दृष्टिकोण का हिस्सा बनाया जाना चाहिए और उन्हें स्कूली व्यवहार की नींव बनना चाहिए। सीखने की क्षमता देने वाला वातावरण वह होता है जहाँ बच्चे सुरक्षित महसूस करते हैं, जहाँ भय का कोई स्थान नहीं होता और स्कूली रिश्तों में बराबरी और जगह में समता होती है।'

संदर्भ

- कलाम, अब्दुल. 2013. *समावेशी शिक्षा और शिक्षक, खोजे और जानें*. विद्याभवन सोसायटी, उदयपुर. अंक 7, पृ. 33.
- यू.एन.जी.ई.आई. 2010. *इक्वालिटी एंड इनक्लूसिव एजुकेशन*. यूनाइटेड नेशंस गर्ल्स एजुकेशन इनीशिएटिव.
<http://www.educationfasttrack.org> से लिया गया.
- यूनेस्को. 1994. *द सलमांका स्टेटमेंट एण्ड फ्रेमवर्क फॉर एक्शन ऑन स्पेशल नीड्स एजुकेशन*. सलमांका स्पेन, यूनेस्को. 28 दिसंबर, 2017 को <https://en.unesco.org/themes/inclusion-in-education> से लिया गया.
- . 2005. *पॉलिसी गाइडलाइन ऑन इनक्लूजन इनस्योरिंग ऐक्सेस टू एजुकेशन फॉर ऑल*. यूनेस्को, पेरिस. पृ. 102–168. 28 दिसंबर, 2017 को <https://en.unesco.org/themes/inclusion-in-education> से लिया गया.

- . 2009. *पॉलिसी गाइडलाइन ऑन इनक्लूजन इन एजुकेशन*. यूनेस्को, पेरिस. पृ. 21–45. 28 दिसंबर, 2017 को <https://en.unesco.org/themes/inclusion-in-education> से लिया गया.
- . 2013. *प्रमोटिंग इनक्लूजिव टीचर एजुकेशन कैरिकुलम*. बैंकॉक, यूनेस्को, पृ. 48–62, 123. 28 दिसंबर, 2017 को <https://en.unesco.org/themes/inclusion-in-education> से लिया गया.
- . 2015. *टीचिंग चिल्ड्रेन विद डिसेबिलिटी इन इनक्लूजिव सेटिंग*. बैंकॉक, यूनेस्को, पृ. 26–68. 01 जनवरी, 2018 को <https://en.unesco.org/themes/inclusion-in-education> से लिया गया.
- . 2015. *द राइट टू एजुकेशन फ़ॉर पर्सन्स विद डिसेबिलिटी*. पेरिस, यूनेस्को. पृ. 16–49.
- राम. 2014. *समावेशी शिक्षा के मायने, खोजे और जानें*. विद्याभवन सोसायटी, उदयपुर. अंक 8, पृ. 45.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2000. *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली. पृ. 31, 73, 74, 91.
- . 2006. *पोजीशन पेपर नेशनल फ़ोकस ग्रुप ऑन एजुकेशन ऑफ़ चिल्ड्रेन विद स्पेशल नीड्स*. नयी दिल्ली. पृ. 16–145.
- . 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली. पृ. 28–31, 92, 96, 122–124, 136.
- . 2015. *इनक्लूडिंग चिल्ड्रेन विद स्पेशल नीड्स*. नयी दिल्ली. पृ. 36, 59, 106.
- . 2017. *विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का समावेशन — प्राथमिक स्तर*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली. पृ. 21, 46, 95.

शिक्षक-प्रशिक्षकों के वृत्तिक विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता का अध्ययन

बृजेश कुमार*
पी.के. साहू**

अध्यापक शिक्षण कार्यो, प्रबंधनों, संस्थानों एवं अध्यापकों के वृत्तिक विकास के उन्नयन हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण विभिन्न स्तरों पर कार्यरत अध्यापकों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। उनकी पेशेवर उन्नति में सहायता देने हेतु एवं विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं एवं शिक्षण को रोचक बनाने हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसी आधार को ध्यान में रखते हुए शोधक के शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं — माध्यमिक स्तर पर शिक्षक शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता का अध्ययन करना एवं स्व-वित्तपोषित एवं वित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्था में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता का तुलनात्मक अध्ययन करना। इसमें उत्तर प्रदेश के बी.एड. स्तर पर कार्यरत समस्त वित्तपोषित एवं स्व-वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षकों में से 100 शिक्षक-प्रशिक्षकों को न्यादर्श के रूप में चुना गया। अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष में शिक्षक-प्रशिक्षकों द्वारा स्वयं का व्यक्तित्व, विद्यार्थी-शिक्षकों को समझना, सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र, पाठ्यक्रम, शिक्षा के क्षेत्र में दक्षता, क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता, शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान को प्राथमिकता दी गई। वित्तपोषित एवं स्व-वित्तपोषित बी.एड. शिक्षक-प्रशिक्षकों की आवश्यकता समान स्तर पर पाई गई।

भूमिका

अध्यापक शिक्षा से अभिप्राय अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था से है। एक सक्षम, आत्मनिर्भर, अनुशासित, चरित्रवान आदि गुणों से युक्त शिक्षक के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यक है। उनकी उच्चकोटि की शिक्षा व्यवस्था जिसे न केवल पाठ्यचर्या से पूरा किया जा सकता है, बल्कि उसके

लिए एक सुनियोजित प्रकल्प की आवश्यकता होती है। इसी कड़ी में अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। समाज में अध्यापक की निर्णायक भूमिका होती है। शिक्षा की गुणवत्ता और राष्ट्रीय विकास में शिक्षक-प्रशिक्षकों के योगदान के लिए उत्तरदायी कारकों में से निस्संदेह सेवाकालीन प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है।

* शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश – 211002

**प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश – 211002

सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता के महत्व को ध्यान में रखते हुए बुच (1968) ने स्वीकार किया कि, “सेवाकालीन कार्यक्रम के अन्तर्गत वे समस्त क्रियाकलाप समाहित किये जा सकते हैं, जिनकी सहायता से अध्यापक/अध्यापिकाएँ अपनी उद्यमगत योग्यता में वृद्धि सेवारत अवस्था में कर सकते हैं।” अतः शिक्षक-प्रशिक्षकों को वृत्तिक विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता से संबंधित विभिन्न कौशलों में दक्ष बनाया जाए जिससे शिक्षक-प्रशिक्षक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में योगदान दे सकें।

संबंधित साहित्य का अध्ययन

भारत में शिक्षक-प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण पर सीमित शोध कार्य हुआ है। यद्यपि उच्च शिक्षा स्तर पर कार्यरत अध्यापकों के प्रशिक्षण आवश्यकता पर कुछ अध्ययन तथा विचारों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है —

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की स्थायी समिति (1975-76) ने सेवारत शिक्षा पर कम से कम प्रत्येक पाँच वर्ष में एक महीने के लिए विद्यालयी शिक्षक व शिक्षक-प्रशिक्षकों को सेवारत प्रशिक्षण प्राप्त करना ज़रूरी होना चाहिए तथा सेवारत शिक्षा मुख्य रूप से पत्राचार पाठ्यक्रमों के द्वारा संचालित की जानी चाहिए।

बेनेकेनाल (1996) ने कर्नाटक के महाविद्यालयी अध्यापकों के सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता पर शोध कार्य किया जिसका उद्देश्य वर्तमान के साथ-साथ भविष्य में अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण आवश्यकता क्षेत्र को ज्ञात करना था। अध्ययन के परिणामस्वरूप निष्कर्ष में पाया गया कि —

- व्यवसाय की उन्नति।
- मूल्यांकन प्रविधियों में प्रवीणता।
- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की समस्याओं का समाधान।
- भविष्य के महाविद्यालयी अधिगमकर्ताओं का ज्ञान।
- आधुनिक शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में रुचि उत्पन्न करना।
- राष्ट्रीय एकता के पोषक वातावरण के निर्माण;
- शिक्षक शिक्षार्थी संबंधों में खुलापन लाने के कौशल में प्रवीणता।
- विद्यार्थियों में सृजनात्मकता का विकास करने वाले अधिगम अनुभव आदि के आयोजन हेतु अध्यापकों द्वारा प्रशिक्षण की आवश्यकता व्यक्त की गई।

सिंह और साहू (2010) ने अपने शोध में पाया कि सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु विश्वविद्यालय और उसके संघटक महाविद्यालय के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं को उनके व्यक्तित्व, शिक्षण, शोध और अन्य बिंदुओं में सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

अध्यापक शिक्षा पर जस्टिस वर्मा (2012) आयोग ने निम्न बिंदुओं पर सेवाकालीन प्रशिक्षा से संबंधित सुझाव दिए —

- शिक्षकों को तत्कालीन परिप्रेक्ष्यों का ज्ञान होना चाहिए।
- प्रत्येक समय नवीन शिक्षण कौशलों का विकास।

- विद्यार्थियों को समझना व उनका विश्लेषण करने की क्षमता।
- अध्यापकों को अपने क्षेत्र में नए-नूतन कार्यक्रमों का ज्ञान होना।
- तत्कालीन नवीन ज्ञान होना।
- तार्किक ज्ञान होना।
- वृत्तिगत विकास हेतु वर्कशॉप, सेमीनार, कॉन्फ्रेंस में भाग लेना।
- तत्कालीन गुणात्मक शिक्षक-प्रशिक्षक पाठ्यक्रम का नियोजन व सामग्री इत्यादि का ज्ञान होना।
- अच्छा शिक्षक बनने की दक्षता रखना।
- समय-समय पर प्रशिक्षण का आकलन करना।
- ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों तथा खंड/मण्डल स्रोत केंद्र (बी.आर.सी.) जैसे संस्थानों को बेहतर बनाना व उचित संसाधनों का विकास करना।
- सेवाकालीन शिक्षण में नीतिगत शिक्षा का ज्ञान होना।

वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता

शिक्षक शिक्षण कार्यों, प्रबन्धनों, संस्थानों एवं शिक्षकों के वृत्तिक विकास के उन्नयन हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण विभिन्न स्तरों पर कार्यरत शिक्षकों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। उनकी पेशेवर उन्नति में सहायता देने हेतु, विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं एवं शिक्षण को रोचक बनाने हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसमें समय-समय पर बदलाव एवं सेवारत शिक्षकों का प्रशिक्षण नियमित किया जाना उचित होगा।

ऐसे बिन्दुओं के आधार पर यह प्रासंगिक होगा कि बदलते परिवेश में शिक्षक-प्रशिक्षकों से जुड़ी सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान की जाए। इस पृष्ठभूमि पर वर्तमान अध्ययन हेतु शोधक द्वारा शोध किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध अध्ययन के निम्न उद्देश्य थे —

- माध्यमिक स्तर पर शिक्षक शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता का अध्ययन करना।
- वित्तपोषित एवं स्व-वित्तपोषित शिक्षक शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

इस अध्ययन के लिए निम्न शून्य परिकल्पना थी —

- शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि तथा शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता में सार्थक संबंध नहीं है।
- विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने हेतु शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है।
- सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है।
- पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है।

- शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है।
- क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है।
- शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया।

जनसंख्या

इस शोध अध्ययन में उत्तर प्रदेश के समस्त वित्तपोषित एवं स्व-वित्तपोषित शिक्षक शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों का जनसंख्या के रूप में चयन किया गया है।

न्यादर्श

सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु पाँच वित्तपोषित बी.एड. प्रशिक्षण महाविद्यालयों में से 50 कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों एवं पाँच स्व-वित्तपोषित बी.एड. प्रशिक्षण महाविद्यालयों में से 50 कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों को न्यादर्श के रूप में चुना गया।

उपकरण

इस शोध अध्ययन में प्रदत्त संकलन के लिए शोधक द्वारा स्व-निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया।

विभिन्न विषय विशेषज्ञों तथा शिक्षकों से प्राप्त सुझाव तथा संबंधित साहित्य के आधार पर प्रश्नावली का निर्माण किया गया, जिसमें सेवाकालीन प्रशिक्षण के सात घटकों को सम्मिलित किया गया। प्रश्नावली में सम्मिलित सात घटक थे — स्वयं का व्यक्तित्व, विद्यार्थी-शिक्षकों को समझना, सामान्य शिक्षण व शिक्षणशास्त्र, पाठ्यक्रम, शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता, क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता एवं शैक्षिक तकनीकी का ज्ञान, इस प्रश्नावली में कुल 36 कथन दिए गए थे। प्रत्येक कथन के सामने तीन विकल्प वाले उत्तर दिए गए थे। सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु आवश्यक प्रश्नावली में बिन्दुवार कथनों की संख्या निम्नवत है —

क्र. सं.	सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु आवश्यक बिन्दु क्षेत्र	कथन संख्या
1.	स्वयं का व्यक्तित्व	06
2.	विद्यार्थी-शिक्षकों को समझना	05
3.	सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र	05
4.	पाठ्यक्रम	05
5.	शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता का विकास	06
6.	क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता	04
7.	शैक्षिक तकनीक का ज्ञान	05

आँकड़ों का विश्लेषण तथा विवेचन

आँकड़ों के विश्लेषण के लिए काई स्क्वायर (χ^2) का प्रयोग किया गया। इसके अतिरिक्त प्रतिशत विश्लेषण का प्रयोग किया गया। सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु बी.एड. शिक्षक-प्रशिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकता का घटकवार विवरण तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1 से ज्ञात होता है कि अधिकांश शिक्षक प्रशिक्षक सेवाकालीन प्रशिक्षण के विभिन्न आयामों

तालिका 1 — घटकवार प्रशिक्षण आवश्यकता का विश्लेषण

क्र. सं.	घटक	अत्यन्त आवश्यक (प्रतिशत विश्लेषण)	सामान्य आवश्यक (प्रतिशत विश्लेषण)	अनावश्यक (प्रतिशत विश्लेषण)	कुल प्रतिशत विश्लेषण
1.	स्वयं का व्यक्तित्व	74%	23%	3%	100%
2.	विद्यार्थी-शिक्षकों को समझना	79%	20%	1%	100%
3.	सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र	77%	21%	2%	100%
4.	पाठ्यक्रम	79%	21%	0%	100%
5.	शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता का विकास	78%	20%	2%	100%
6.	क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता	80%	19%	1%	100%
7.	शैक्षिक तकनीक का ज्ञान	87%	13%	0%	100%

पर शिक्षा प्राप्त करने की अत्यंत आवश्यकता को महसूस करते हैं। विभिन्न घटकवार आवश्यकताओं की तुलना दर्शाती है कि अत्यधिक मात्रा में (80 प्रतिशत से 87 प्रतिशत) शिक्षक-प्रशिक्षक क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता एवं शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान के प्रति अत्यंत आवश्यकता व्यक्त करते हैं। इस क्रम में अन्य प्रशिक्षण आवश्यकताओं में विद्यार्थी-शिक्षकों को समझना, पाठ्यक्रम, शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता, सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र में दक्षता और स्वयं के व्यक्तित्व विकास में दक्षता के प्रति सेवाकालीन प्रशिक्षण को अधिक आवश्यक मानते हैं।

स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध के χ^2 परीक्षण को तालिका 2 में दिया गया है।

तालिका 2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अवलोकित χ^2 का मान 2.19 है, जोकि (मुक्तांश=2) पर 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान से कम है। अतः इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस घटक के लिए बनी शून्य परिकल्पना स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, यह स्वीकार की जाती है। अतः वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के स्वयं के व्यक्तित्व विकास हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर और स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के स्वयं के व्यक्तित्व विकास हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 2 — स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का x^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यन्त आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	2×3 सारणी से x^2 का मान
वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	36 (72%)	12 (24%)	02 (4%)	50	2.19*
स्व-वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	38 (76%)	11 (22%)	01 (2%)	50	
योग	74	23	03	100	

*0.05 सार्थक स्तर असार्थक है।

उपरोक्त तालिका 2 से ज्ञात होता है कि अत्यधिक संख्या (74) में शिक्षक-प्रशिक्षक स्वयं के व्यक्तित्व के विकास हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता को अधिक आवश्यक मानते हैं। स्वयं के व्यक्तित्व विकास से संबंधित आवश्यकता जिन बिन्दुओं से संबंध रखती है, वे हैं — स्वयं अनुशासित रहने के कौशल, प्रसन्न चित्त रहने का तरीका, स्वयं की सोच में नवीनता लाना, सामान्य से हटकर मौलिक सोच रखने का तरीका, एक अच्छा वक्ता बनने का कौशल, शैक्षिक संगोष्ठियों में बढ़-चढ़कर भाग लेने के तरीके आदि। इनमें सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर की पाई गई।

विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने हेतु अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का x^2 परीक्षण तालिका 3 में दिया गया है।

तालिका 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित x^2 का मान 0.38 है, जो कि (मुक्तांश=2) पर 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान

से कम है। अतः इस क्षेत्र के लिए x^2 का मान सार्थक नहीं है। इस घटक के लिए बनी शून्य परिकल्पना विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, स्वीकार की जाती है।

अतः वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों हेतु विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर और स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों हेतु विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 3 से ज्ञात होता है कि अत्यधिक संख्या (79) में शिक्षक-प्रशिक्षक विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता को अधिक आवश्यक मानते हैं। विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने से संबंधित आवश्यकता जिन बिन्दुओं से संबंध रखती है, वे हैं — विद्यार्थी-शिक्षकों की योग्यता को पहचानने की विधि का तरीका, विद्यार्थी-शिक्षकों

तालिका 3 — विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने हेतु शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यंत आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	2×3 सारणी से χ^2 का मान
वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	40 (80%)	9 (18%)	01 (2%)	50	0.38*
स्व-वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	39 (78%)	11 (22%)	0 (0%)	50	
योग	79	20	01	100	

*0.05 सार्थक स्तर असार्थक है।

के प्रशिक्षण आवश्यकता को जाँचने का कौशल, विद्यार्थी-शिक्षकों की शैक्षिक समस्या को दूर करने के उपाय, विद्यार्थी-शिक्षकों में सृजनात्मक विकास लाने की विधियाँ, विद्यार्थी-शिक्षकों का मार्गदर्शन करने की समझ रखना आदि। इनमें सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर की पाई गई है। सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण तालिका 4 में दिया गया है।

तालिका 4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 1.22 है, जोकि (मुक्तांश=2) पर 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान से कम है। अतः इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस घटक के लिए बनी शून्य परिकल्पना सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, स्वीकार की जाती है।

अतः वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर और स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 4 से ज्ञात होता है कि अत्यधिक संख्या (77) में शिक्षक-प्रशिक्षक सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता को अधिक आवश्यक मानते हैं। सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र से संबंधित आवश्यकता जिन बिन्दुओं से संबंध रखती है, वे हैं — अध्यापक शिक्षण कार्य रोचक बनाने का कौशल, कक्षा में विद्यार्थी-केंद्रित उपागमों के प्रयोग करने का कौशल, विभिन्न प्रकार की पाठ्य सहगामी क्रियाओं के आयोजन का कौशल, समूह शिक्षण कौशल का ज्ञान, समेकित शिक्षण कौशल का ज्ञान आदि। इनमें सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर की पाई गई है।

तालिका 4 — सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र हेतु शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यंत आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	2×3 सारणी से χ^2 का मान
वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	37 (74%)	12 (24%)	01 (2%)	50	1.22*
स्व-वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	40 (80%)	9 (18%)	1 (2%)	50	
योग	77	21	02	100	

*0.05 सार्थक स्तर असार्थक है।

पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण तालिका 5 में दिया गया है।

तालिका 5 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 0.11 है, जोकि (मुक्तांश=2) 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान से कम है। अतः इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस घटक के लिए बनी शून्य परिकल्पना पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, स्वीकार की जाती है।

अतः वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर और स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 5 से ज्ञात होता है कि अत्यधिक संख्या (79) में शिक्षक-प्रशिक्षक पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता को अत्यंत आवश्यक मानते हैं। पाठ्यक्रम में दक्षता से संबंधित आवश्यकता जिन बिन्दुओं से संबंध रखती है, वे हैं— अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम प्रस्तुति को रुचिकर बनाने का कौशल, अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में विभिन्न पहलुओं के विकास का कौशल, अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नैतिक मूल्यों के विकास का कौशल, अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में पर्यावरण के प्रति जागरूक करने का तरीका आदि। इनमें सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर की पाई गई।

शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण तालिका 6 में दिया गया है।

तालिका 6 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 0.54 है, जोकि

तालिका 5 — पाठ्यक्रम में दक्षता हेतु शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यंत आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	2×3 सारणी से χ^2 का मान
वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	40 (80%)	10 (20%)	0 (0%)	50	0.11*
स्व-वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	39 (78%)	11 (22%)	0 (0%)	50	
योग	79	21	0	100	

*0.05 सार्थक स्तर असार्थक है।

(मुक्तांश=2) 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान से कम है। अतः इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस घटक के लिए बनी शून्य परिकल्पना शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता हेतु अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं अध्यापक प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, स्वीकार की जाती है।

अतः वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर और स्व-वित्तपोषित

संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 6 से ज्ञात होता है कि अत्यधिक संख्या (78) में शिक्षक-प्रशिक्षक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। पाठ्यक्रम में दक्षता से संबंधित आवश्यकता जिन बिंदुओं से संबंध रखती है, वे हैं— समावेशी पाठ्यक्रम की समझ; समाजशास्त्रीय विश्लेषणात्मक और अवधारणात्मक साधनों की

तालिका 6 — शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता हेतु शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यंत आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	2×3 सारणी से χ^2 का मान
वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	38 (76%)	11 (22%)	1 (2%)	50	0.54*
स्व-वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	40 (80%)	9 (18%)	1 (2%)	50	
योग	78	20	2	100	

*0.05 सार्थक स्तर असार्थक है।

समझ; समुदाय के साथ जुड़ने के लिए प्रायोगिक अनुभव की समझ; ऐतिहासिक, दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों की दृष्टि से विद्यालयी ज्ञान के सैद्धांतिक आधारों की समझ; अध्यापन और अधिगम के पाठ्यक्रम की समझ आदि। इनमें सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर की पाई गई।

क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण तालिका 7 में दिया गया है।

तालिका 7 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 0.91 है, जो कि (मुक्तांश=02) 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान से कम है। अतः इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस घटक के लिए बनी शून्य परिकल्पना क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, स्वीकार की जाती है।

अतः वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर और स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 7 से ज्ञात होता है कि अत्यधिक संख्या (80) में शिक्षक-प्रशिक्षक क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता से संबंधित आवश्यकता जिन बिंदुओं से संबंध रखती है, वे हैं — छात्राध्यापक कार्यक्रम में विद्यालयी परिदृश्य के साथ संबंध स्थापित करने की समझ, प्रायोगिक क्रियाकलाप के दौरान सभी पाठ्यक्रमों में अधिन्यास (असाइनमेंट) करवाने की समझ, प्रायोगिक क्रियाकलाप के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करने की समझ आदि। इनमें सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान स्तर की पाई गई।

तालिका 7 — क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता हेतु शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यंत आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	2×3 सारणी से χ^2 का मान
वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	41 (82%)	08 (16%)	1 (2%)	50	0.91*
स्व-वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	39 (78%)	11 (22%)	0 (0%)	50	
योग	80	19	1	100	

*0.05 सार्थक स्तर असार्थक है।

शैक्षिक तकनीक के ज्ञान में शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध के χ^2 परीक्षण को तालिका 8 में दिया गया है।

तालिका 8 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अवलोकित χ^2 का मान 1.33 है, जोकि (मुक्तांश=2) 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान से कम है। अतः इस क्षेत्र के लिए χ^2 का मान सार्थक नहीं है। इस घटक के लिए बनी शून्य परिकल्पना शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान हेतु शिक्षक शिक्षा संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता संबंधित नहीं है, स्वीकार की जाती है।

अतः वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान में विकास हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर और स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की पृष्ठभूमि एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों के शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान में विकास हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता के स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 8 से ज्ञात होता है कि अत्यधिक संख्या (87) में शिक्षक-प्रशिक्षक शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान में विकास हेतु प्रशिक्षण आवश्यकता की अत्यंत आवश्यक मानते हैं। शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान में विकास से संबंधित आवश्यकता जिन बिंदुओं से संबंध रखती है, वे हैं — मुक्त शैक्षिक संसाधनों को खोजने का ज्ञान, शिक्षण कार्य में खुले शैक्षिक संसाधनों के उपयोग का तरीका, शिक्षण कार्य में 'मैसिव ओपेन ऑनलाइन कोर्स (एम.ओ.ओ.सी.)' के कौशल का ज्ञान, आई.सी.टी. के कौशल का ज्ञान, आई.सी.टी. के शिक्षण में उपयोग के तरीके आदि। इनमें सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता समान पाई गई।

अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष

सेवाकालीन प्रशिक्षण के क्षेत्र में और अधिक दक्षता के लिए वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षकों और स्व-वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षकों में अधिकतर (80% से 87%) को सेवाकालीन प्रशिक्षण की अत्यंत आवश्यकता अग्रलिखित क्षेत्रों में है —

तालिका 8 — शैक्षिक तकनीक के ज्ञान में शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकताओं के संबंध का χ^2 परीक्षण

संस्थागत पृष्ठभूमि	अत्यंत आवश्यक	सामान्य आवश्यक	अनावश्यक	योग	2×3 सारणी से χ^2 का मान
वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	45 (90%)	05 (10%)	0 (0%)	50	1.33*
स्व-वित्तपोषित संस्था के शिक्षक-प्रशिक्षक	42 (84%)	08 (16%)	0 (0%)	50	
योग	87	13	1	100	

*0.05 सार्थक स्तर असार्थक है।

- स्वयं के व्यक्तित्व विकास में।
- विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने में।
- सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र की समझ में।
- पाठ्यक्रम विकास में।
- शिक्षा के परिप्रेक्ष्य के दक्षता विकास में।
- क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप के दक्षता विकास में।
- शैक्षिक तकनीकी कौशल में।
- स्वयं के व्यक्तित्व विकास में वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षकों व स्व-वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षकों (72 प्रतिशत और 76 प्रतिशत) सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यंत आवश्यक मानते हैं।
- 80 प्रतिशत वित्तपोषित संस्थानों के शिक्षक-प्रशिक्षक और 78 प्रतिशत स्व-वित्तपोषित संस्थानों के शिक्षक-प्रशिक्षक विद्यार्थी-शिक्षकों को समझने के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यंत आवश्यक मानते हैं।
- सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र के लिए 74 प्रतिशत और 80 प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षक सेवाकालीन शिक्षा को अत्यंत आवश्यक मानते हैं।
- 80 प्रतिशत वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षक व 78 प्रतिशत स्व-वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षक पाठ्यक्रम में दक्षता बढ़ाने हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यंत आवश्यक मानते हैं।
- 76 प्रतिशत वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षकों ने शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता बढ़ाने की अनुशंसा की या सुझाव दिया तथा 80 प्रतिशत स्व-वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षकों ने भी इसके लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण को अत्यंत आवश्यक माना।

- 82 प्रतिशत वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षक तथा 78 प्रतिशत स्व-वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षक क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप के विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण अत्यंत आवश्यक मानते हैं।
- 90 प्रतिशत वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षक तथा 84 प्रतिशत स्व-वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षक शैक्षिक तकनीकी के ज्ञान के विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण अत्यंत आवश्यक मानते हैं।

उपर्युक्त परिणाम को देखते हुए कहा जा सकता है कि वित्तपोषित व स्व-वित्तपोषित शिक्षक-प्रशिक्षकों को विभिन्न बिन्दुओं, जैसे — स्वयं के व्यक्तित्व का विकास, विद्यार्थी-शिक्षकों को समझना, पाठ्यक्रम विकास, शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता, प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता, सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र में दक्षता एवं शैक्षिक तकनीकी में दक्षता आदि में, सेवाकालीन प्रशिक्षण दिए जाने की अत्यंत आवश्यकता महसूस हुई है।

शैक्षिक निहितार्थ

आधुनिक समय में अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में सेवाकालीन प्रशिक्षण की अत्यंत आवश्यकता महसूस की जा रही है। इन घटकों द्वारा विभिन्न स्तरों पर कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों के वृत्तिक विकास हेतु सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता बिंदुवार महसूस हो रही है, जैसे — स्वयं के व्यक्तित्व का विकास, विद्यार्थी-शिक्षकों को समझना, सामान्य शिक्षण एवं शिक्षणशास्त्र का ज्ञान, पाठ्यक्रम, विद्यार्थी-शिक्षकों के विकास में दक्षता, सैद्धान्तिक पाठ्यक्रमों का ज्ञान, शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दक्षता,

विद्यालयी पाठ्यचर्या संबंधित विषय में दक्षता, का ज्ञान, संस्थान की गुणवत्ता का ज्ञान, भविष्यपरक क्षेत्र/प्रायोगिक क्रियाकलाप में दक्षता, कार्यक्रम नियोजन कौशल के ज्ञान से संबंधित विभिन्न कार्यान्वयन हेतु दक्षता, नवाचारी शिक्षणशास्त्र घटकों द्वारा शिक्षक शिक्षा संस्थाओं में सेवा-पूर्व में प्रशिक्षण की आवश्यकता, प्रशिक्षण तकनीक प्रशिक्षित शिक्षकों व सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षकों हेतु कौशल का ज्ञान, इन्टर्नशिप शिक्षण कार्य का सेवाकालीन प्रशिक्षण की अत्यंत आवश्यकता है, ज्ञान, शैक्षिक तकनीक (ओ.ई.आर., आई.सी.टी., ताकि शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के विद्यार्थी-शिक्षकों एम.ओ.ओ.सी.) का ज्ञान, आकलन एवं मूल्यांकन एवं शिक्षक प्रशिक्षकों का सर्वांगीण विकास किया जा सके।

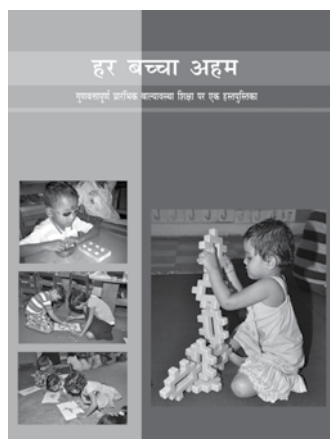
संदर्भ

- कुण्डु सी. एल. 1988. *इण्डियन इयर बुक ऑन टीचर एजुकेशन*. स्टारलाइन पब्लिशर्स प्रा.लि., नयी दिल्ली.
- कुमार जे. और आर लाल. 1980. *यूज ऑफ माइक्रोटीचिंग इन इंप्रूविंग जनरल टीचिंग कॉम्पिटेन्सी ऑफ इन सर्विस टीचर्स*. रा.शै.अ.प्र.प., हरियाणा.
- दुबे शरतेन्दु, सत्य नारायण (नवीन संस्करण). 2014. *अध्यापक शिक्षा*. शारदा पुस्तक भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद.
- नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन. 2016. *रिपोर्ट ऑफ द कमेटी फॉर इवैल्यूएशन ऑफ द न्यू एजुकेशन पॉलिसी*. भारत सरकार, नयी दिल्ली.
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 1992. *नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986*. (विदमोडिफिकेशन अण्डरटेकेन इन 1992). नयी दिल्ली.
- . 2014. *राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् अधिसूचना*. भारत का राजपत्र, नयी दिल्ली.
- भट्टाचार्य, जी.सी. 2016-17. *अध्यापक शिक्षा*. अग्रवाल पब्लिशर्स, आगरा.
- बेनेकेनल और साहू. 1996. *फ़ॉरकास्टिंग नीड्स एंड रिसोर्स पोर्टेशियल्स फ़ॉर इन सर्विसिज एजुकेशन ऑफ कॉलेज टीचर्स इन कर्नाटका टुवर्ड्स 2005*. अप्रकाशित शोध ग्रंथ, अहल्या विश्वविद्यालय, इंदौर शिक्षा विभाग, मध्य प्रदेश.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद्. 1970. *एजुकेशन एण्ड नेशनल डेवलपमेंट रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन, 1964-66*. वॉल्यूम 03. हायर एजुकेशन. नयी दिल्ली.
- . 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.
- सक्सेना एन.आर., बी.के. मिश्रा और आर.के. मोहन्ती. 2008. *अध्यापक शिक्षा*. लाल बुक डिपो, मेरठ.
- सिंह और साहू. 2010. *उच्च स्तर पर कार्यरत अध्यापक प्रशिक्षण प्रभावशीलता का अध्ययन*. अप्रकाशित शोध ग्रंथ, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.

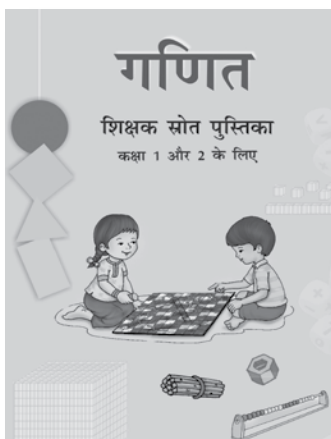
एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें



कहो कहानी
₹ 50.00 / पृष्ठ 68
कोड — 21031
ISBN — 978-93-5007-316-2



हर बच्चा अहम
₹ 240.00 / पृष्ठ 186
कोड — 13180
ISBN — 978-93-5292-092-1



गणित
₹ 150.00 / पृष्ठ 168
कोड — 13179
ISBN — 978-93-5292-088-4



**शिक्षण और अधिगम की
सृजनात्मक पद्धतियाँ**
₹ 75.00 / पृष्ठ 130
कोड — 13107
ISBN — 978-93-5007-280-6

लेखकों के लिए दिशानिर्देश

लेखक अपने मौलिक लेख/शोध-पत्र सॉफ़्ट कॉपी (जहाँ तक संभव हो यूनीकोड में) के साथ निम्न पते या ई-मेल journals.ncert.dte@gmail.com पर भेजें –

अकादमिक संपादक

भारतीय आधुनिक शिक्षा

अध्यापक शिक्षा विभाग

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016

लेखक ध्यान रखें कि लेख/शोध-पत्र —

- सरल एवं व्यावहारिक भाषा में हो, जहाँ तक संभव हो लेख/शोध-पत्र में व्यवहारिक चर्चा एवं दैनिक जीवन से जुड़े उदाहरणों का समावेश करें।
- विषय-वस्तु लगभग 2500 से 3000 शब्दों या अधिक में हिंदी फ़ॉन्ट में टंकित हो।
- विषय-वस्तु के साथ ही तालिका एवं ग्राफ़ हो तथा व्याख्या में तालिका में दिए गए तथ्यों एवं ग्राफ़ का उल्लेख हो।
- ग्राफ़ अलग से Excel File में भी भेजें।
- विषय-वस्तु में यदि चित्र हो, तो उनके स्थान पर खाली बॉक्स बनाकर चित्र संख्या लिखें एवं चित्र अलग से JPEG फ़ॉर्मेट में भेजें, जिसका आकार कम से कम 300 dots per inch (dpi) हो।
- लेखक/शोधक अपना संक्षिप्त विवरण भी दें।
- संदर्भ वही लिखें जो लेख/शोध-पत्र में आए हैं, अर्थात् जिनका वर्णन लेख/शोध-पत्र में किया गया है। संदर्भ लिखने का प्रारूप एन.सी.ई.आर.टी. के अनुसार हो जैसे—

पाल, हंसराज. 2006. *प्रगत शिक्षा मनोविज्ञान*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

लेख —

- लेख की वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आधारित सार्थक प्रस्तावना लिखें, जो आपके लेख के शीर्षक से संबंधित हो, अर्थात् वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर जो नीतिगत परिवर्तन आए हैं, उनका समावेश करने का प्रयास करें।
- निष्कर्ष या समापन विशिष्ट होना चाहिए।

शोध-पत्र —

- शोध-पत्र की वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आधारित सार्थक प्रस्तावना एवं औचित्य लिखें, जो आपके शोध-पत्र के शीर्षक से संबंधित हो, अर्थात् वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर जो नीतिगत परिवर्तन आए हैं एवं जो शोध कार्य हुए हों, उनका समावेश करने का प्रयास करें।
- न्यादर्श की पूरी जानकारी लिखें अर्थात् न्यादर्श की प्रकृति, न्यादर्श चयन का तरीका आदि।
- प्रदत्त संकलन के लिए उपयोग किए गए उपकरणों की संक्षिप्त जानकारी।
- प्रदत्त विश्लेषण में तथ्यों का गुणात्मक आधार बताते हुए विश्लेषण करें।
- उद्देश्यानुसार निष्कर्ष लिखें तथा समापन विशिष्ट होना चाहिए।
- शोध-पत्र के शैक्षिक निहितार्थ भी लिखें, अर्थात् आपके शोध निष्कर्षों से किन्हें लाभ हो सकता है।

रजि. नं. 42912/84

शिक्षणऽ मूलमन्त्रम्



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING